अप्रैल - जून 1997 प्रतियोगिता विशेषांक वर्ष : 29 ✲ अंक : 2

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

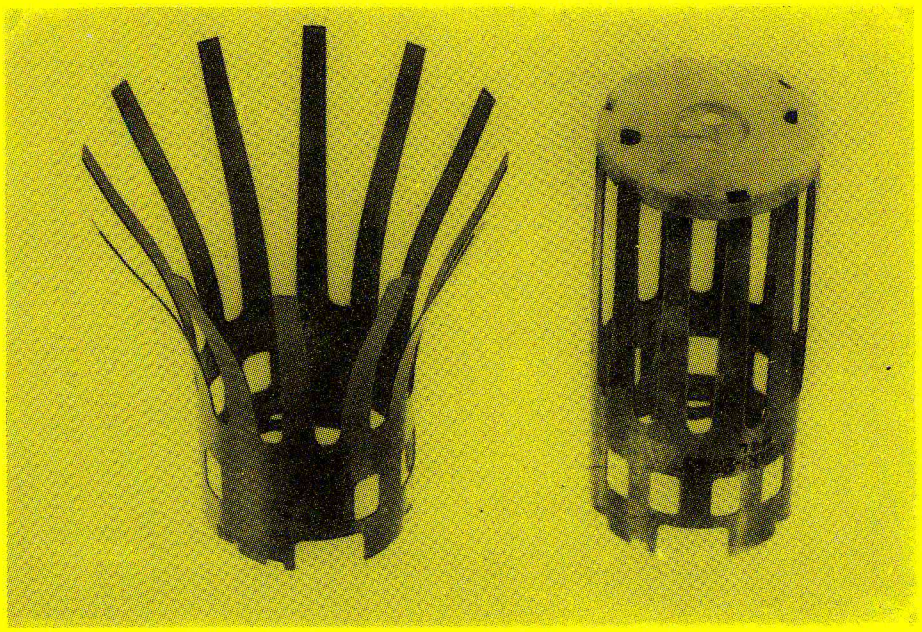

आयुधों में उपयोगी विशेष मिश्रधातु से बना कोरोनट

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

परिषद हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु नियमित रुप त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है ।

एक जनवरी 1997 से परिषद की सदस्यता एवं "वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है :

	परिषद सदस्यता (रु में)			वैज्ञानिक शुल्क (रु में)
	एक वर्ष	आजीवन	संरक्षक	एक वर्ष
व्यक्तिगत	50	400	5000	50
संस्थागत	100	1000		100

- "वैज्ञानिक" पत्रिका की कोई आजीवन सदस्यता / शुल्क नहीं है ।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को " वैज्ञानिक" नि:शुल्क भेजी जाती है ।
- सभी शुल्क **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से केवल **डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई)** द्वारा ही भेजें । **मुंबई** से बाहर के चैक, मनीआर्डर एवं पोस्टल आर्डर द्वारा भेजा शुल्क स्वीकार नहीं होगा ।
- कृपया शुल्क से साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिये गये आवेदन पत्र के प्रारुप के अनुसार भेजें ।
- संरक्षक सदस्य, यदि चाहें तो, उनका एक विज्ञापन प्रतिवर्ष "वैज्ञानिक" में नि:शुल्क छापा जा सकता है ।

"वैज्ञानिक" में विज्ञापन

हिंदी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है । देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं । इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं । पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी X 21 सेमी है ।

विज्ञापन की दरें	**: एक अंक के लिए**
अंतिम आवरण	: रु 2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	: रु 2,000/-
पूरा पृष्ठ	: रु 1,500/-
आधा पृष्ठ	: रु 800/-

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता -1997

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं । लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए । लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है । **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ साथ अच्छे रेखाचित्रों/फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है ।** अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें । फोटोग्राफ ब्लैक एण्ड व्हाइट में हों तो उचित रहेगा । इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें । दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) नीचे दिये गये पते पर भेजें ।

पुरस्कार : प्रथम - रु 2000/=, द्वितीय - रु 1500/=, तृतीय-रु 750/=

बढ़ायी गयी अंतिम तिथि : 15 दिसंबर 1997

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार, प्रत्येक रु 500/- के दिये जायेंगे । अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें ।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी । "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे ।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री इंद्र कुमार शर्मा, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक", पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD), भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई 400 085

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 29 अंक 2

अप्रैल - जून 1997

व्यवस्थापन मंडल

श्री इंद्र कुमार शर्मा

डॉ. अशोक कुमार सूरी

श्री ललित कुमार

श्री कुलवंत सिंह

संपादन मंडल

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

श्री हरिओम मित्तल

डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला

श्री रामनाथ जिंदल

डॉ. राज नारायण पांडेय

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु	50 रु

शुल्क भेजने का पता

श्री ललित कुमार

कोषाध्यक्ष,

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,

पदार्थ विज्ञान प्रभाग,

भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. एक विशेष आयुध मिश्रधातु - स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात 5
   – डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा
2. मस्तिष्क - प्रकृति की एक अनोखी देन 14
   – एस. वेंकटाचलम
3. पदार्थों को जोड़ने की नयी तकनीक विसरण जुड़ाई 22
   – गजानन काले
4. खनिज तेल उत्पादन में आत्मनिर्भरता के प्रयास 28
   – डॉ. अतुल कुमार सामंत
5. ऑर्थोपेडिक सर्जरी में सिरेमिक का उपयोग 33
   – डॉ. मिथलेश कुमार सिन्हा
6. कृत्रिम दृष्टि : विज्ञान का आधुनिकतम उपहार 40
   – डॉ. घनश्याम दास जिंदल

मानव स्वास्थ्य

1. कैंसर रोगियों में आत्महत्या 45
   – नमिता शर्मा एवं डॉ. अवधेश दीक्षित
2. टौक्सोप्लाज्मोसिस 49
   – डॉ. सरमन सिंह

टिप्पणियां

1. बुराँश - एक पुष्प वृक्ष 52
   – मोहन चंद्र कबड्वाल
2. कड़वी नीम के मीठे लाभ 52
   – डॉ. दिनेश मणि
3. हल्दी - एक गुणकारी औषधि 54
   – नवीन बोहरा एवं श्रीमती रेखा दाधीच
4. स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान और इसके क्षेत्र 56
   – कृषिचयन

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।
● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर नवीनीकरण करा लें । यदि संभव हो तो आजीवन सदस्य बन जायें ।

5. मात्रकों का संसार एवं संसार के मात्रक 58
– विमलेश चन्द्र

बाल विज्ञान

बैटरी के संघटक एवं आकार 63
– डॉ. अरविंद कुमार गुप्ता

विज्ञान समाचार

● **भा. प. अ. केंद्र से** 66
● **अन्य समाचार** 67

संगोष्ठी समाचार 69

विज्ञान कविता

आओ पेड़ लगायें 44
– डॉ. दिनेश चमोला

पुच्छल तारा 48
– शाह आलम सिद्दीकी

वैज्ञानिक आविष्कार 51
– निसार अहमद

कुछ फूल : फूल कांटे 71

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

कार्यकारिणी (1997-99)

पदाधिकारी

अध्यक्ष : श्री अनिल कुमार आनंद
उपाध्यक्ष : डॉ. अशोक कुमार सूरी
सचिव : श्री राम अवतार अग्रवाल
सहसचिव : श्री स्वप्नेश कुमार मल्होत्रा
कोषाध्यक्ष : श्री एस. के. गुप्ता

सदस्य

श्री राम प्रसाद
डॉ. एस. के. कुलश्रेष्ठ
श्री गोरा चक्रवर्ती
डॉ. (श्रीमती) वीणा सागर
श्री जगदीश शर्मा
श्री एम. आर. वाजपेयी

संपादकीय

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक संगोष्ठियां - किसके लिए ?

जनवरी-मार्च 1994 अंक (26:1) के संपादकीय के माध्यम से 'हिंदी में वैज्ञानिक संगोष्ठियां', विषय पर कुछ विचार प्रस्तुत किये गये थे। इसमें संदेह नहीं कि संगोष्ठियां एक ऐसा मंच प्रदान करती हैं जहां पर अलग-अलग क्षेत्रों से आये वैज्ञानिक तथा शोधकर्ता न केवल अपने-अपने शोध कार्यों पर प्रकाश डालते हैं बल्कि अन्य वैज्ञानिकों एवं प्रौद्योगविदों के मध्य सीधा संपर्क भी स्थापित करते हैं। यह सीधा संपर्क शोध कार्य पर स्पष्टीकरण तथा तथ्यों की सत्यता हासिल करने में महत्वपूर्ण होता है। यही नहीं विभिन्न विषयों/क्षेत्रों के शोधकर्ता अपनी अपनी कठिनाइयों पर विचार विमर्श कर कुछ हल निकालने में भी सफल होते हैं।

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक संगोष्ठियों / परिसंवादों के आयोजनों की आवश्यकता एवं सार्थकता का संबंध जनसामान्य में वैज्ञानिक जागृति एवं दृष्टिकोण लाने से है। इसमें शिक्षितवर्ग एवं वैज्ञानिकों का सामाजिक दायित्व निहित है। रॉयल सोसायटी की एक रिपोर्ट में वैज्ञानिकों के सामाजिक दायित्व का उल्लेख करते हुए बताया गया कि यह प्रत्येक वैज्ञानिक की अहम् व्यावसायिक (प्रोफेशनल) जिम्मेदारी है कि वह जनसामान्य की विज्ञान की समझ एवं चेतना को बढ़ाने की दिशा में अवश्य कार्य करे। भारत जैसे विकासशील देशों में, जहां का अधिकांश जनमानस ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, जिनके लिए नियोजित एवं औपचारिक शिक्षा के अवसर भी काफी कम हैं, वहां के लोगों को विज्ञान के बारे में जानकारी देना राष्ट्रीय हित में ही होता है। वस्तुतः यह एक राष्ट्रीय मिशन ही बनाया जाना चाहिए। ऐसा करने से जनसामान्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनेगा जिससे वे प्रकृति की घटनाओं/परिघटनाओं के बारे में तार्किक (लॉजिकल) तरीके से सोचने के लिए प्रेरित होंगे। यह उन्हें अंधविश्वासों से मुक्त करने में सहायक बनेगा ताकि वे सार्थक एवं सही मायनों में जीवन निर्वाह कर राष्ट्रीय विकास में अपना अधिकाधिक योगदान दे सकेंगे। यही नहीं उनमें पर्यावरण प्रदूषण, सार्वजनिक स्वच्छता, स्वच्छ पेयजल, पोषण इत्यादि के बारे में वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी आयेगी और वे उसका उपयोग कर अपने रहन सहन का स्तर ऊंचा उठा पायेंगे। यह जानकारी उन्हें उनके उद्योग धंधों में अधिक कार्य सक्षम एवं क्षमता वाले तौर तरीकों व उपकरणों को अपनाने में भी सहायक बनेगा।

इस जनमानस (लक्ष्यवर्ग) को वैज्ञानिक जानकारी पहुंचाने के लिए उपलब्ध विभिन्न माध्यमों में से, उनकी भाषाओं (विभिन्न भारतीय भाषाओं) में संगोष्ठियां एक प्रभावी माध्यम माना गया है। क्योंकि यह उल्लेखनीय है कि पढ़ने-लिखने से पहले सुनने और समझने का स्थान आता है। इस संबंध में पहला प्रश्न यह उठा था कि क्या वैज्ञानिक संगोष्ठियां / परिसंवाद भारतीय भाषाओं में आयोजित हो सकती हैं जबकि अधिकांश वैज्ञानिक साहित्य अंग्रेजी में उपलब्ध है और उसे अंग्रेजी में पढ़ाया जाता है। अतः यह प्रायोगिक तौर पर प्रारंभ किया गया। इसे विभिन्न चरणों में आगे बढ़ाने का कार्य पिछले कई वर्षों से चला आ रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में एक चार स्तरीय कार्यक्रम के बारे में मैंने "वैज्ञानिक" के जनवरी-मार्च 1994 के अंक में बात कही थी। विषयों का चुनाव एवं क्रमबद्ध रूप में लक्ष्य वर्ग का चयन इसके प्रमुख घटक कहे जा सकते हैं। इस तरह की योजनाओं को कार्यरूप देने में विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं एवं संगठनों (दोनों सरकारी तथा स्वयंसेवी) की भूमिका अहम् है। अधिकतर विज्ञान संस्थाएं/परिषदें राष्ट्रीय संस्थानों में स्वयंसेवी तौर पर कार्य कर रही हैं। ये इस कार्य को काफी प्रभावी तौर पर कर सकती हैं यदि समुचित प्रोत्साहन मिले क्योंकि इनके कार्यकर्ताओं में स्वयं से समाज के लोगों के लिए कुछ करने की चाह होती है। ये उन महत्वाकांक्षी लोगों से अलग होते है जिन्हें हर कार्य में अपना स्वार्थ ही पहले दिखाई देता है।

विभिन्न विज्ञान संस्थाओं एवं परिषदों द्वारा पिछले 10-15 वर्षों में अलग अलग भारतीय भाषाओं में आयोजित संगोष्ठियों / विचार गोष्ठियों से एक बात तो स्पष्ट हो गयी है कि विज्ञान के गूढ़ तथा आधुनिकतम विषयों पर चर्चा इन भारतीय भाषाओं में संभव है। या यूं कहा जा सकता है कि विज्ञान संचार में भाषा कोई अवरोध नहीं उत्पन्न करती है। परंतु अभी तक की अधिकांश गोष्ठियों में लक्ष्य वर्ग (श्रोता) शिक्षित एवं विज्ञान विषय का ज्ञाता रहा है। जिन्होंने इन संगोष्ठियों के विषय के स्तर, संचार की सरलता, सुगम्यता, रोचकता इत्यादि की पुष्टि की। इसके बाद कुछ सीमित दायरे में कम वैज्ञानिक जानकारी तथा औपचारिक शिक्षा वाले लक्ष्यवर्ग (प्रतिभागियों) पर यह प्रयोग आगे बढ़ाया गया। इस संदर्भ में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र की 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' ने एक प्रेरणीय भूमिका निभायी है। पिछले कुछ वर्षों से केंद्र में प्रशानिक एवं सहायक कर्मचारियों के लिए हिंदी भाषा में संगोष्ठियों

की एक श्रृंखला प्रारंभ की है । इसके परिणाम काफी उत्साहजनक एवं संतोषप्रद रहे हैं । इस वर्ग के लोगों को केंद्र में चल रहे वैज्ञानिक कार्यक्रमों की जानकारी दी गयी जिससे न केवल उनका मनोबल बढ़ा बल्कि वे अपने इर्द गिर्द के समाज के लोगों को भी इन वैज्ञानिक जानकारियों को देने में अपने आप को कुछ हद तक सक्षम बना पाये । यह उनके लिए गर्व की बात बनी । इसी प्रकार एक अन्य कार्यक्रम (मानव स्वास्थ्य) के अंतर्गत गृहस्वामिनों के लिए भी हिंदी में संगोष्ठी को आयोजन हो रहा है ।

यह उल्लेखनीय है कि केरला शास्त्र परिषद, केरला, लोक विज्ञान संघटना, महाराष्ट्र, लोक विज्ञान चलवल, मुंबई, सुरुचि विद्यापीठ, बारडोली (सूरत, गुजरात), 'प्रयास', गुजरात तथा अन्य संस्थाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान जत्था, विज्ञान मेले जैसे कार्यक्रम प्रभावी तौर पर चलाये गये । इन कार्यों को और अधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक चेतना बढ़े । इसी प्रकार आकाशवाणी द्वारा 1991 से 1994 के बीच अपने लगभग 200 रेडियो स्टेशनों से देश की 18 भारतीय भाषाओं में मानव विकास से संबंधित 144 एपिसोड (कथांश) वाला एक लंबा सीरियल का प्रसारण काफी सफल रहा । इसे प्रत्येक रविवार सुबह 10-14 वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों के लिए प्रसारित किया गया और यह एक पारस्परिक क्रियात्मक (interactive) कार्यक्रम था । हर पांचवें एपिसोड में बच्चों के प्रश्नों / टिप्पणियों पर चर्चा की जाती थी । वैज्ञानिक दृष्टिकोण उपजाने में इस प्रकार के कार्यक्रमों की महत्ता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है ।

अब, जबकि यह स्पष्ट हो चुका है कि विज्ञान के बारे में जानकारी संगोष्ठियों के माध्यम से संभव है, तो हम उस लक्ष्यवर्ग की प्रतिभागिता बढ़ायें जिसके लिए इस आंदोलन को प्रारंभ किया गया था । इसलिए यह वांछनीय हो गया है कि इनके आयोजनों का स्थान बड़े बड़े राष्ट्रीय संस्थानों / केंद्रों से हटाकर ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे शहरों के स्कूलों / कालेजों के सभागृहों अथवा सामूहिक केंद्रों में ले जाया जाय । यहां पर लक्ष्य वर्ग का चुनाव काफी सूझबूझ एवं सावधानी के साथ करना होगा ताकि इन संगोष्ठियों/विज्ञान मेलों पर होने वाले धन का लाभ सही लोगों को मिल सके । इसलिए वे लोग आमंत्रित किये जायें जिन्हें आमतौर पर विज्ञान जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती परंतु उनमें रुचि है अथवा जिनमें विज्ञान मेलों व विज्ञान जत्था कार्यक्रमों से वैज्ञानिक जानकारी लेने के प्रति रुचि जागृत हो गयी हो । घरेलू महिलाओं (गृहस्वामिनों) की भागीदारी भी बढ़ाना आवश्यक होगा क्योंकि वे ही हमारे पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं । यदि वास्तविकता पर ध्यान दिया जाय तो सही अर्थों में समाज में एक स्वस्थ जीवन शैली की परंपरा को बनाये रखने और जनस्वास्थ्य / पोषण कार्यक्रमों को प्रभावी एवं सफल करने में महिलाएं सराहनीय भूमिका अदा कर सकती हैं ।

अंत में, मैं पुनः यही दोहराना चाहूंगा कि भारतीय भाषाओं में आयोजित हो रही संगोष्ठियों के स्वरूप में बदलाव लाकर इन्हें विज्ञानियों के सीमित दायरे से बाहर ले जाकर उन लोगों के बीच आयोजित किया जाय जिनके लिए यह कार्यक्रम शुरू किया गया था । आरंभ में कई दिक्कतें आयेंगी परंतु उन्हें ग्रामीण एवं छोटे शहरों के परिवेशों के अनुरूप सुलझाया जा सकता है । आवश्यक सुविधाओं एवं यंत्रों को वहां पर ले जाकर कार्य किये जा सकते हैं । इससे उन विद्यार्थियों, वयस्कों, महिलाओं में इस दिशा में कुछ सोच बनेगी अन्यथा कहीं ऐसा न हो जाय कि अभी तक के ये प्रयास मात्र कुछ शिक्षित वर्गों में सिमट कर जनसमान्य के लिए एक निराशाजनक चित्र प्रस्तुत कर अपना अस्तित्व खो बैठें ।

●

प्रस्तुत अंक वर्ष 1997 का प्रतियोगिता विशेषांक है । इसमें वर्ष 1996 में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता में पुरस्कृत लेखों को दिया गया है । इन प्रतियोगिताओं में लोगों की रुचि की कमी का संकेत मिला है । यह न केवल हमारे लिए बल्कि संपूर्ण वैज्ञानिक समुदाय के लिए एक चिंताजनक बात है । पाठकों से अनुरोध है कि कृपया इस विषय पर अपने विचार हमें भेजें तथा हमारी कमियों पर भी प्रकाश डालें ताकि भारतीय भाषाओं में जनसामान्य तक विज्ञान पहुंचाने एवं वैज्ञानिक साहित्य सृजन के कार्य के हमारे संकल्प को पूरा करने के लिए सही मार्ग दर्शन हो सके । वर्ष 1997 से इस प्रतियोगिता का नाम 'डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता' रख दिया गया है, साथ ही पुरस्कार की राशि को भी बढ़ाया गया है । पिछले अंक में मैंने 21 वीं शताब्दी के आगमन की तैयारी से संबंधित एक सुझाव रखा था । उस पर आप लोगों की प्रतिक्रियाओं / टिप्पणियों की अपेक्षा बनी हुई है ।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1996) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

एक विशेष आयुध मिश्रधातु - स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात

डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा,
रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला,
कंचनबाग, हैदराबाद - 500 058.

हैदराबाद की रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला पिछले 30 वर्षों से सामरिक महत्व की धातुओं के विकास मे कार्यरत है तथा इसके द्वारा विकसित अनेक मिश्रधातुओं का व्यापारिक स्तर पर भी निर्माण किया जा रहा है। इस लेख में एक ऐसी विशेष मिश्रधातु के विकास की चर्चा की गयी है जिसकी उपलब्धि ने एक बहुत ही जटिल आयुध के विकास व निर्माण में सहायता की है। क्लस्टर बंब के नाम से प्रसिद्ध इस आयुध में एक महत्वपूर्ण पुर्जा, "कोरोनट" होता है जिसे एक उच्च बलशाली मिश्रधातु द्वारा निर्मित किया जाता है। इस मिश्रधातु में बहुत से गुणों का समावेश आवश्यक है, जैसे कि, आतनन बल, तन्यता आदि। चूंकि अस्त्र शस्त्रों को बहुत समय तक भंडारित किया जाता है, अतः इस धातु की कोरोजन अवरोधक क्षमता भी उत्तम होनी चाहिए। इन सबसे ऊपर एक विशेष गुण का होना भी आवश्यक है जिसे "रेजिलेयेन्स" कहते हैं। विभिन्न पैरामीटरों के प्रमापण के उपरांत इस विशेष धातु का विकास किया गया तथा फिर इस मिश्रधातु से अभीष्ट पुर्जे का निर्माण भी किया गया। पुर्जे की दीर्घगामी कार्यक्षमता का मूल्यांकन करने के साथ-साथ इसके इस्पात की निर्माण विधि व मानक का प्रारूप भी तैयार किया गया। इस समय 'मिधानी' में इस धातु का उच्च स्तर पर निर्माण हो रहा है व पिछले 5 वर्षों में लगभग 10 टन धातु का निर्माण करके देश ने विदेशी मुद्रा की बचत करने के साथ-साथ आत्मनिर्भरता की दिशा में भी एक नया अध्याय जोड़ा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले तथा बाद के कुछ वर्षों तक भी अधिकतर युद्ध संबंधी सामग्री विदेशों से ही आयात की जाती थी। यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के दौरान साधारण अस्त्र शस्त्रों के निर्माण तथा उनके परीक्षण के लिए कुछ संस्थान स्थापित किये गये थे परंतु ये पुरानी पद्धतियों पर आधारित होने के साथ-साथ अपर्याप्त भी थे। अतः स्वतंत्र भारत में आयुध निर्माण के क्षेत्र में अनेक उद्योग स्थापित किये गये तथा भविष्य की आवश्यकताओं व सामरिक महत्व को देखते हुए रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन का भी पुनर्गठन किया गया। इस संगठन के अंतर्गत तथा प्रतिरक्षा संबंधी सभी कार्यों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रयोगशालाओं की स्थापना की गयी। इन संस्थानों द्वारा अनेक विकास कार्यक्रम प्रारंभ किये गये जिनके सफल परिणाम अब प्रत्यक्ष दिखायी दे रहे हैं।

हैदराबाद स्थित रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला (डी. एम. आर. एल.) पिछले 30 वर्षों से सामरिक महत्व की ऐसी अनेक विशेष धातुओं के विकास में कार्यरत है जिनका उपयोग अस्त्र शस्त्रों के निर्माण में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक है। उदाहरणतया, वैमानिक कलपुर्जों में प्रयुक्त होने वाली उच्च ताप सहनीय सुपरमिश्रधातुएं, टिटेनियम व एल्युमिनियम पर आधारित शक्तिपूर्ण विशेष मिश्रधातुएं तथा विशेष प्रकार के इस्पात जिनका उपयोग तोपों, टैंक व अन्य सैनिक वाहनों में होता है। इसके अतिरिक्त डी. एम. आर. एल. ने नाना प्रकार के ऐसे धातुकीय कलपुर्जों का विकास

तालिका-1 : आयातित कोरोनट का रसायनिक विश्लेषण

तत्व	C	Si	Mn	Ni	Cr	Mo	Co	Ti	Al	Nb	Fe
भार प्रतिशत	0.03	0.1	0.1	4.2	12.5	4.5	12.6	0.3	0.1	0.1	शेष

व प्रयोगशाला स्तर पर निर्माण भी किया है जो इन आयुधों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे कि एल. आर. चुंबक, राडार के लिए मैगनेट्रोन चुंबक, वैमानिक इंजनों में उपयोग हेतु सुपरमिश्रधातुओं से निर्मित टरबाइन फलक व डिस्क तथा एल्युमिनियम पर आधारित शैटर मिश्रधातु द्वारा निर्मित विशेष कास्टिंग, जिसका उपयोग टैंक के पेरिस्कोप में होता है। सैनिक विमानों में प्रयुक्त ब्रेक पैड तथा टंगस्टन मिश्रधातु से निर्मित टैंक भेदी अस्त्र, एफ. एस. ए. पी. डी. एस. (FSAPDS) इस प्रयोगशाला की कुछ ऐसी प्रमुख उपलब्धियाँ हैं जिनके औद्योगिक हस्तांतरण तथा व्यापारिक स्तर पर निर्माण में भी हमने सक्रिय सहयोग दिया है। इसी मार्ग पर अग्रसर होते हुए डी. एम. आर. एल. की एक नवीन उपलब्धि है – क्लस्टर बंब के एक महत्वपूर्ण कलपुर्जे के लिए विशेष इस्पात का विकास। एक सहयोगी संस्था, आयुध अनुसंधान तथा विकास संस्थान (ARDE), जिसे क्लस्टर बंब के विभिन्न कलपुर्जों का दायित्व सौंपा गया था, के आग्रह पर डी. एम. आर. एल. ने इस बंब के विभिन्न कलपुर्जों का धातुकीय विश्लेषण करने के अतिरिक्त कुछ ऐसी मिश्रधातुओं के विकास का बीड़ा भी उठाया जो भारत में प्राप्य नहीं थीं जैसे कि "कोरोनट" का विशेष इस्पात। इस लेख में इस विशेष इस्पात के अपेक्षित इस्पात गुणधर्मों तथा इस इस्पात को 0.72 मिली मीटर की स्ट्रिप के रूप में विकसित करने के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गयी है। डी. एम. आर. एल. के सहयोग से मिधानी द्वारा इस विशेष इस्पात की स्ट्रिप के निर्माण व इस स्ट्रिप से अभीष्ट कलपुर्जे (कोरोनट) को बनाने के दौरान उत्पन्न विभिन्न समस्याओं व उनके निदान से संबंधित विभिन्न प्रयासों पर भी प्रकाश डाला गया है।

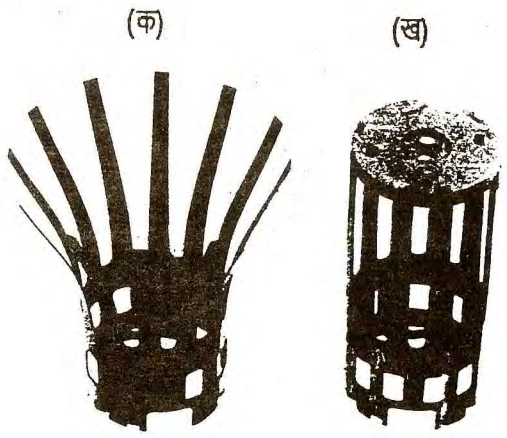

चित्र -1 : कोरोनट (क) पंखुड़ियां खुली हुई तथा (ख) सामान्य बंद पंखुड़ियों की स्थिति

कोरोनट की कार्य विशिष्टता :

आयातित कोरोनट का रसायनिक विश्लेषण करने के पश्चात यह पाया गया कि इसका निर्माण अवक्षेप-कठोरीकरण (Precipitation hardening) श्रेणी की इस्पात द्वारा किया गया है (तालिका-1) जिसको स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात भी कहा जाता है। इस कलपुर्जे की कार्य प्रणाली व आयुध में इसकी उपयुक्तता का अध्ययन करने पर तथा ए. आर. डी. ई. से विचार विमर्श करने के बाद यह अनुमान लगाया गया कि संभवतः यह एक "स्मृति मिश्रधातु" (memory alloy) है। इस अनुमान का मुख्य आधार "कोरोनट" की कार्य विशिष्टता है जिसे चित्र-1 के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है।

0.72 मिमी. मोटी, 146 मिमी. चौड़ी व 213 मिमी. लंबी धातु स्ट्रिप की स्टॉम्पिंग करके तथा फिर इसे

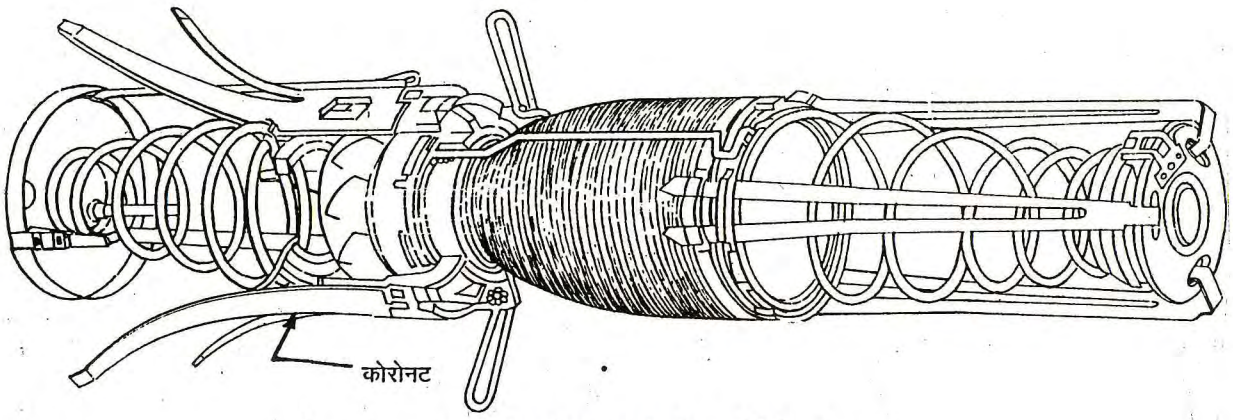

चित्र -2 : क्लस्टर बंब में प्रयुक्त बंबलेट कोरोनेट के साथ

रोल करके 68.5 मिमी. व्यास के बेलन का आकार दिया गया है। नीचे के दोनों सिरों को वेल्ड करने के बाद ऊपरी पंखुड़ियों को समान रूप से बाहर की ओर खोला गया है जिससे उनका व्यास लगभग 130 मिमी. हो गया है (चित्र-1क)। परंतु यदि इन पंखुड़ियों को संकुचित करने का प्रयत्न किया जाता है तो ये अपनी स्वाभाविक अवस्था में पहुंच जाती हैं जब तक कि उन्हें 68.5 मिमी. व्यास के एक प्लास्टिक कप द्वारा स्थायी रूप से नियंत्रित नहीं किया जाता (चित्र-1ख)। इस प्रकार से नियंत्रित यह कोरोनट (चित्र-2) बंबलैट में पीछे की ओर रहता है। वर्षों तक इस अवस्था में रहने के उपरांत भी यदि प्लास्टिक कप को हटाया जाय तो यह आवश्यक है कि सभी पखुड़ियां समान रूप से खुलें और अपना 134 मिमी. व्यास का स्वाभाविक आकार फिर ग्रहण करें। वास्तव में इस लचीलेपन का श्रेय इस धातु के एक विशेष गुणधर्म को दिया जाता है जिसे रैजिलियेन्स (Resilience) या "सिप्रिंगबैक" कहते हैं। इस गुणधर्म का विकास करने के लिए मिश्रधातु में निम्नलिखित विशेष गुणों का होना अत्यंत अनिवार्य है।

i. साधारण अवस्था में व्याकर्षण बल (yield strength) का कम होना, और
ii. धातु में एजिंग उपचार प्रक्रिया द्वारा व्याकर्षण बल का समुचित विकास

चित्र-3 में दिखाया गया है कि साधारण अवस्था में स्ट्रैस-स्ट्रेन वक्र रेखा के नीचे का क्षेत्रफल बहुत कम है परंतु अवक्षेप कठोरीकरण उपचार के पश्चात व्याकर्षण बल में बढ़ोतरी के साथ-साथ प्रत्यास्थ (इलैस्टिक) स्ट्रेन में भी वृद्धि होती है जिससे कि स्ट्रैस-स्ट्रेन वक्र रेखा के नीचे का क्षेत्रफल बहुत बढ़ जाता है। इस प्रक्रिया को "यंग मापांक" में कमी होना या "रैजिलियेन्स" का विकास भी कह सकते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह तो बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि जब बेलनाकार कोरोनट की ऊपरी पंखुड़ियों को 134 मिमी. व्यास तक समान रूप से खोला जाता है तो इस दबाव से उत्पन्न स्ट्रेन अवश्य ही प्रत्यास्थ सीमा को पार कर जाता है तथा एक स्थायी अवस्था ग्रहण कर लेता है। इसके उपरांत कोरोनट में अवक्षेप कठोरीकरण प्रक्रिया या एजिंग द्वारा व्याकर्षण बल तथा प्रत्यास्थ स्ट्रेन दोनों में बढ़ोतरी की जाती है। अब यदि इन पंखुड़ियों को संकुचित किया जाता है तो उत्पन्न स्ट्रेन प्रत्यास्थ सीमा के अंदर ही रहता है तथा वर्षों तक इस स्थिति में रहने पर भी इस पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं होता।

अपेक्षित गुणधर्म :

आयुधों में इस्तेमाल की जाने वाली धातुओं का विकास व चयन सदैव ही एक समस्या का विषय रहा है क्योंकि अपेक्षित धातुकीय गुणों को विकसित करने के

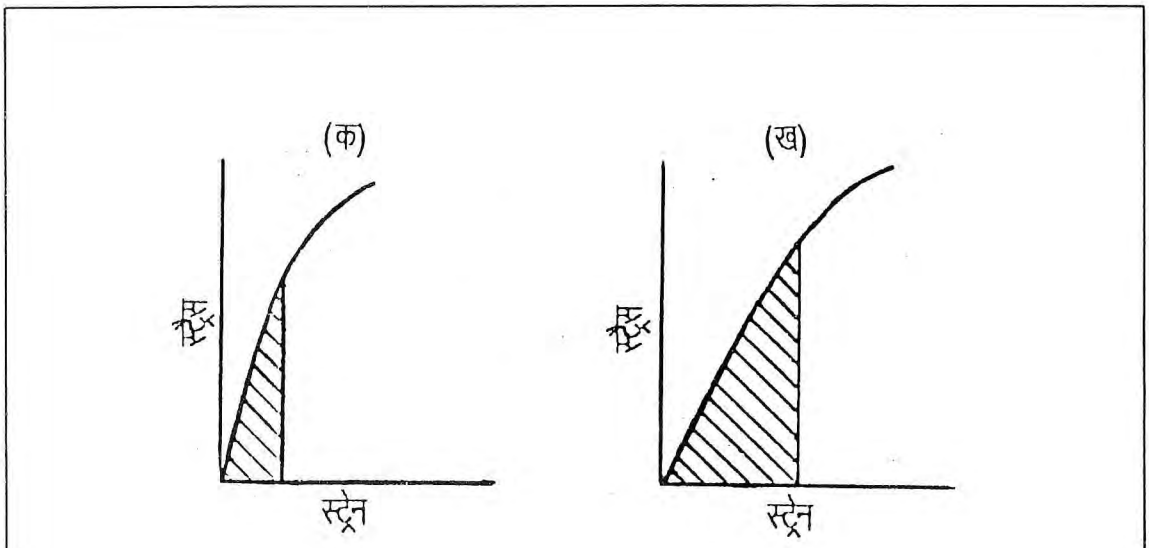

चित्र -3 : (क) विलयन उपचार के पश्चात तथा (ख) विलयन व एजिंग उपचार के बाद स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात के स्ट्रेस-स्ट्रेन संबंध पर प्रभाव

साथ-साथ कई अन्य प्रकार के पहलुओं पर भी ध्यान देना पड़ता है। इनमें प्रमुख हैं - धातु की विभिन्न आकार व रूप में सरलता से परिवर्तित होने की क्षमता तथा कलपुर्जों की कार्यक्षमता में टिकाऊपन। चूंकि आयुधों का बहुत वर्षों तक भंडारण किया जाता है, इसलिए इनमें प्रयुक्त धातुओं में विभिन्न वातावरणों को सहने की क्षमता भी होनी चाहिए। विशेषकर भारत जैसे देश में जहां मरूस्थल की शुष्क गर्मी, लद्दाख की बर्फीली सर्दी तथा समुद्रीय आर्द्रता जैसी विषम परिस्थितियां रहती हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों से जूझने के लिए आयुधों के निर्माण में प्रयुक्त सभी धातुकीय पदार्थों में उत्तम कोरोजन निरोधक क्षमता का होना बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं में सहजता के लिए "फार्मेबिलिटी" व "वेल्डेबिलिटी" जैसे गुणों का होना भी बहुत आवश्यक है।

कोरोनट की विशेष धातु में भी इन सभी गुणधर्मों की उपस्थिति अनिवार्य समझी गयी। इसके अतिरिक्त इस धातु में उचित ताप-उपचार द्वारा शक्ति विकास की पर्याप्त क्षमता भी अवश्य होनी चाहिए। चूंकि इस प्रकार के धातुकीय गुण अवक्षेप कठोरीकरण श्रेणी के इस्पात में विद्यमान होते हैं तथा आयातित "कोरोनट" के विश्लेषण से इसकी पुष्टि भी हुई थी, इसलिए एक विशेष स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात के विकास का निर्णय लिया गया। परंतु विकास कार्य आरंभ करने से पहले विकास संबंधित सभी संभावित कठिनाइयों का सामना करने के लिए इस विशेष मिश्रधातु के धातु विज्ञान को समझना बहुत आवश्यक है।

कोरोनट इस्पात का धातु विज्ञान :

संपूर्ण आस्टिनाइट का विकास

यह इस्पात उस मारटैनसिटिक स्टेनलेस इस्पात पर आधारित है जिसमें 12 से 17 भार प्रतिशत क्रोमियम (Cr), 4 भार प्रतिशत तक निकल (Ni) तथा 0.1 से 1.0 भार प्रतिशत तक कार्बन (C) होता है। उचित कोरोजन निरोधक क्षमता के विकास के लिए Cr की मात्रा कम से कम 12 भार प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए। यदि Cr की मात्रा 17% से अधिक हो तो मारटैनसिटिक सरंचना के विकास में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है व अवांछनीय फैराइट (α) प्रावस्था का विकास हो सकता

तालिका-2 : 0.1%C, 12%Cr इस्पात में विद्यमान फैराइट पर अन्य तत्वों का प्रभाव

तत्व	N	C	Ni	Co	Mn	Si	Mo	Ti	Nb	Cr	V	Al
तत्व के प्रत्येक भार प्रतिशत से उत्पन्न फैराइट की मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन	-220	-210	-20	-7	-6	+6	+5	+12	+14	+14	+18	+54

है विशेषकर कि जब हमें इस इस्पात में कुछ अन्य शक्तिदायक धातुओं का भी योग करना है। Mo तथा Nb जैसी धातुएं इस्पात में फैराइट प्रावस्था की उत्पत्ति को बढ़ावा देती हैं, परंतु अभीष्ट गुणधर्म विकसित करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि साधारण अवस्था में अर्थात ताप-उपचार से पहले इस्पात की संरचना संपूर्ण रूप से ऑस्टिनिटिक हो। इसको और अधिक समझने के लिए तथा इस इस्पात में दूसरे तत्वों की समुचित मात्रा निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम फैराइट/आस्टिनाइट संबंध पर अन्य धातुओं के प्रभाव की भी चर्चा करें।

तालिका-2 में 0.1 प्रतिशत C तथा 12 प्रतिशत Cr युक्त इस्पात में उपस्थित फैराइट प्रावस्था पर अन्य धातुओं के प्रभाव को दर्शाया गया है। परंतु यहां इस तथ्य पर ध्यान देना जरूरी है कि इन धातुओं की कुछ मात्रा कार्बन तथा ऑक्सीजन के साथ भी मिलती है।

इस तालिका से यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि आस्टिनिटिक प्रावस्था को स्थिरता प्रदान के लिए कार्बन सबसे उत्तम व सस्ता पदार्थ है परंतु "कोरोनेट इस्पात" में इसे निम्नलिखित कारणों से उपयोगी नहीं माना जा सकता :-

i) कार्बन वेल्डेबिलिटी को कम करता है।

ii) कार्बन कोरोजन निरोधक शक्ति को घटाता है।

iii) कार्बन ऐसे कार्बाइड यौगिकों के निर्माण में सहायता करता है जिनको घोलने के लिए अधिक ताप की आवश्यकता पड़ेगी। फलस्वरूप आस्टिनिटिक कणीय संरचना में वृद्धि होगी तथा आघात सहन शक्ति (toughness) का पतन होगा।

iv) कार्बन द्वारा Ms ताप में कमी के कारण, ऐसे ताप-उपचार की आवश्यकता होगी जिसमें शून्य सेल्सियस से भी नीचे जाकर ठंडा करना होगा।

Ms तापमान पर विभिन्न धातुओं का प्रभाव :

0.1 प्रतिशत कार्बन तथा 12 प्रतिशत क्रोमियम युक्त इस्पात का Ms तापमान लगभग 300^0 सेल्सियस तक आंका गया है। यह देखा गया है सिवाय कोबाल्ट के, आघात सहन शक्ति में वृद्धि करने वाली लगभग सभी धातुएं Ms-Mf तापमान क्षेत्र को अवनमित करती हैं। परिणामस्वरूप प्रतिधारित (retained) ऑस्टिनाइट के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ती है जिससे निम्नलिखित समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती हैं :

i) मृदीकरण अर्थात टैंपरिंग उपचार के दौरान विकृति,

ii) टैंपरिंग से पहले आवश्यक शक्ति का अभाव, तथा

iii) टैंपरिंग के बाद अमृदीकृत (untempered) मारटैनसाइट का विकास, क्योंकि कार्बाइड अवक्षेपीकरण द्वारा प्रतिधारित ऑस्टिनाइट-मारटेनसाइट परिवर्तन तापमान में और भी कमी होती है।

अत: यह अनिवार्य है कि कोरोनट इस्पात में ऐसी धातुओं को मिलाया जाय जिससे Ms तापमान सामान्य स्थिति से नीचे न जाये। तालिका-3 में कुछ ऐसी धातुओं की चर्चा है जो Ms तापमान पर बहुत प्रभाव डालती हैं।

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर इस श्रेणी के इस्पात के Ms तापमान व रसायनिक संरचना में निम्नलिखित संबंध स्थापित किया गया है :

Ms (^{0}से.) = 832-29 (%Cr) -39 (%Ni) -5 (%Co) -36 (%Mo) -0 (%Ti)

इस संबंध के अनुसार Ms को गिराने में निकल की तुलना में कोबाल्ट का योगदान बहुत कम है। यद्यपि

तालिका-3 : 0.1% C व 12% Cr इस्पात के Ms तापमान पर विभिन्न तत्वों का प्रभाव

तत्व	C	Mn	Ni	Ti	Cr	Mo	Si
Ms तापमान का ह्रास/ भार प्रतिशत	-474	-33	-17	-17	-21	-11	-11

तालिका- 4 : 0.1C/12 Cr इस्पात के AC_1 तापमान पर धातुओं का प्रभाव

धातु	Ni	Mn	Co	Si	Mo	Al	V
AC में परिवर्तन / भार प्रतिशत (^{0} से.)	-30	-25	-5	+20	+25	+30	+50

Mo की उपस्थिति में टिटेनियम का Ms पर प्रभाव लगभग नगण्य होता है परंतु Mo की उपस्थिति में टिटेनियम का गुणांक "-55" पाया गया है।

ऑस्टिनिटिक प्रत्यावर्तन तापमान :

उच्च तापमान पर मारटैनसाइट से आस्टिनाइट में रुपांतरण के दौरान यह देखा गया है कि बाद में किये जाने वाले मृदीकरण (टैंपरिंग) हेतु तापमानों का चुनाव बहुत कठिन होता है। उदाहरणतया 0.12C/12Cr इस्पात का AC_1 तापमान लगभग 740^0 से. होता है तथा 700^0 से. पर मृदीकरण करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। परंतु यदि इस इस्पात में निकल जैसी कुछ अन्य धातुओं का योग किया जाय तो AC_1 तापमान 650^0 से. से भी नीचे चला जायेगा। तालिका-4 में कुछ ऐसी धातुओं के के प्रभाव को दिखाया गया है।

इस सूची के आंकड़ों के अनुसार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि Ms तापमान पर कोबाल्ट का प्रभाव लगभग नगण्य है परंतु यदि इस्पात को 650^0 से. से नीचे के तापमान पर मृदीकृत करना आवश्यक है तो निकल की मात्रा 3 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ायी जा सकती। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोबाल्ट युक्त स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात में मारटैनसाइट की स्थिरता अन्य इस्पातों से बहुत अधिक है। फैराइट की मात्रा को बढ़ाने व Ms तापमान को गिराने में भी कोबाल्ट की भूमिका बहुत कम है। इसके अतिरिक्त कोबाल्ट, Mo की उपस्थिति में, एजिंग प्रक्रिया के दौरान अवक्षेपीकरण को बढ़ाता है तथा वांछित शक्ति के विकास में बहुत सहायक सिद्ध होता है।

कोरोजन अवरोधक शक्ति :

स्टेनलेस मारजिंग इस्पात की कोरोजन अवरोधक शक्ति उसकी रासायनिक तथा कणीय संरचना दोनों पर ही निर्भर करती है। निस्संदेह क्रोमियम का सबसे अधिक महत्व है और जैसे कि पहले भी चर्चा की गयी है, कोरोजन अवरोधक शक्ति के उचित विकास के लिए क्रोमियम की न्यूनतम भार प्रतिशत मात्रा 12 होती है। कोबाल्ट का इस क्षेत्र में अधिक महत्व नहीं माना जाता परंतु मोलीबिडनम की उचित मात्रा कोरोजन अवरोधक शक्ति को बढ़ाने में बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है, विशेषकर अम्लीय वातावरण में।

एजिंग उपचार के दौरान हुई अवक्षेपीकरण प्रक्रिया का स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात की कोरोजन अवरोधक क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। संभवतः इसका कारण Cr पर आधारित उन प्रावस्थाओं का अवक्षेपीकरण है जिनसे मैट्रिक्स में Cr की मात्रा कम हो जाती है। इन प्रावस्थाओं में प्रमुख हैं : $(FeCr)_2$ Mo, सिग्मा (σ), तथा आर (R)। सामान्यतया, एजिंग उपचार के तापमान व अवधि में वृद्धि के साथ साथ कोरोजन अवरोधक शक्ति का भी पतन होता है।

प्रयोगशाला स्तर पर विकास :

कोरोनट का विकास तीन प्रमुख चरणों में किया गया :-

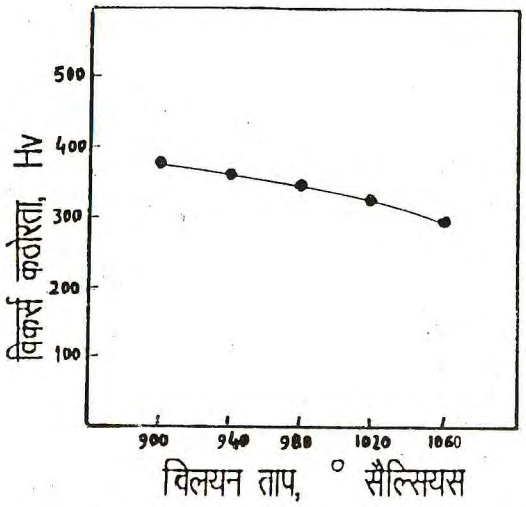

चित्र-4 : 0.72 मिमी. मोटी स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात की स्ट्रिप पर विभिन्न विलयन ताप पर व विकर्स कठोरांक का संबंध

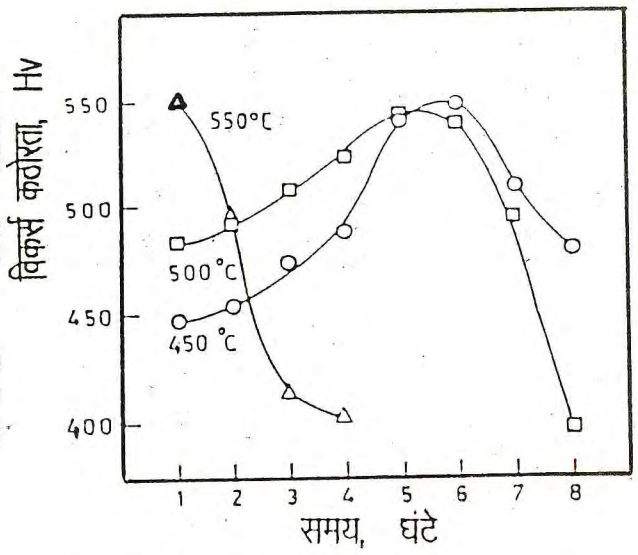

चित्र-5 : एजिंग तापमान व समयावधि का स्टेनलेस मारेजिंग इस्पात की विकर्स कठोरता पर प्रभाव

(क) आयातित कोरोनट का धातुकीय विश्लेषण :

जैसे कि इस संबंध में पहले भी विस्तार से चर्चा की जा चुकी है कि कोरोनट में प्रयुक्त इस्पात की रासायनिक संरचना नियंत्रित तथा स्वच्छ होनी चाहिए अर्थात सल्फाइड, नाइट्राइड आदि जैसे अवांछनीय इनक्लूजनों की मात्रा बहुत कम हो। इस हेतु इस इस्पात के निर्माण के लिए निर्वात पर आधारित गलन तकनीक का उपयोग आवश्यक है।

(ख) मिश्रित इस्पात का निर्माण तथा विधायन :

तालिका-1 में दी गयी रासायनिक सरंचना के अनुसार व निर्वात इन्डक्शन गलन विधि द्वारा इस इस्पात का 20 किग्रा. तथा 75 मिली. के धातुपिंडकों के रूप में निर्माण किया गया। पिंडक (ingot) पर गहन अध्ययन करने के उपरांत विभिन्न विधायन पैरामीटरों की अनुकूलता स्थापित की गयी। इस प्रकार से स्थापित पैरामीटरों की अनुकूलता को सिद्ध करने के लिए बाद में 80 किलोग्राम भार व 150 मिमी. व्यास के धातु पिंडकों को भी कास्ट किया गया। इन पिंडकों की तापकुट्टन द्वारा 30 मिमी. मोटी तथा 150 मिली. चौड़ी प्लेट बनायी गयी तथा फिर इसे उचित ताप पर रोल करके 2 से 3 मिमी. मोटी शीट में रूपांतरित किया गया। उचित पिकलिंग द्वारा ऑक्सीकृत परत को हटाया गया तथा फिर इस शीट को शीतल रोलिंग द्वारा 0.72 मिमी. की स्ट्रिप में परिवर्तित किया गया। इस रूपांतरण के दौरान बहुत कठिनाइयों का सामना करना करना पड़ा क्योंकि एक बार में 40 प्रतिशत से अधिक डिफॉर्मेशन संभव नहीं था तथा बार-बार तापानुशीलन (annealing) करके स्ट्रिप की कठोरता में कमी करना आवश्यक होता था जिससे स्ट्रिप की फिर रोलिंग की जा सके। इस प्रकार से प्राप्त 0.72 मिमी. मोटी स्ट्रिप पर विभिन्न ताप उपचारों के गुणधर्मों पर प्रभाव का मूल्यांकन किया गया। चित्र-4 में विभिन्न विलयन तापमानों के विकर्स कठोरांक पर प्रभाव को दिखाया गया है तथा चित्र-5 में विभिन्न "एजिंग" तापमानों के विकर्स "कठोरांक" पर हुए प्रभाव को भी दर्शाया गया है।

(ग) अभीष्ट कलपुर्जों का निर्माण तथा इसकी कार्य उपयुक्तता :

नवविकसित इस्पात के गुणधर्मों का मूल्यांकन करने के साथ-साथ अभीष्ट कलपुर्जों अर्थात कोरोनट का

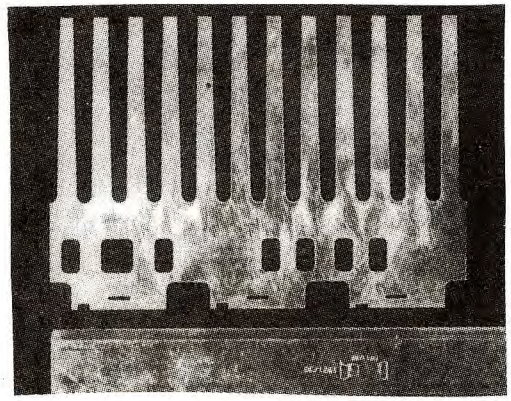

चित्र-6 : स्टांपिंग के बाद कोरोनट शीट की आकृति

निर्माण तथा इसकी योग्यता को परखने का कार्य समानांतर रूप से किया गया। तापानुशीतित 0.72 मिमी. स्ट्रिप को 142 मिमी. चौड़ी व 220 मिमी. लंबी आकृति में काट कर प्रत्येक टुकड़े को पूर्वनिर्धारित विलयन तापमान अर्थात 980^0 से. पर 30 मिनट तक गर्म करके शीघ्रता से ठंडा किया गया। तदुपरांत इस प्रकार से मृदुकृत स्ट्रिप के टुकड़ों को पहले से निर्मित डाइ व फ्लाइ प्रेस की सहायता से एच्छिक आकृति में परिवर्तित किया गया (चित्र-6)। फिर इसे रोल करके तथा निचले भाग को इलेक्ट्रॉन बीम वेल्डिंग तकनीक द्वारा इस प्रकार से जोड़ा गया कि एक बेलनाकार आकृति प्राप्त हो जाय (चित्र-7)। (इलेक्ट्रॉन बीम वैल्डिंग तकनीक के विकास में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रॉम्बे के प्लाज्मा व लेज़र प्रभाग ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया।) फिर इस बेलनाकार आकृति के ऊपरी सिरे अर्थात पंखुड़ियों को उचित सांचे में रख कर तथा समुचित दबाव देकर इस प्रकार खोला गया कि ऊपरी व्यास नीचे के व्यास से लगभग दुगना हो गया जैसा कि पहले भी चित्र-1 की सहायता से दर्शाया गया है। अंत में 450^0 से. पर चार घंटे तक इसका एजिंग उपचार किया गया, जिससे पंखुड़ियों में एच्छिक शक्ति व प्रत्यास्थ स्ट्रेन का विकास हुआ। चित्र-8 में इस इस्पात की सूक्ष्मकणीय संरचना दिखाई गयी है।

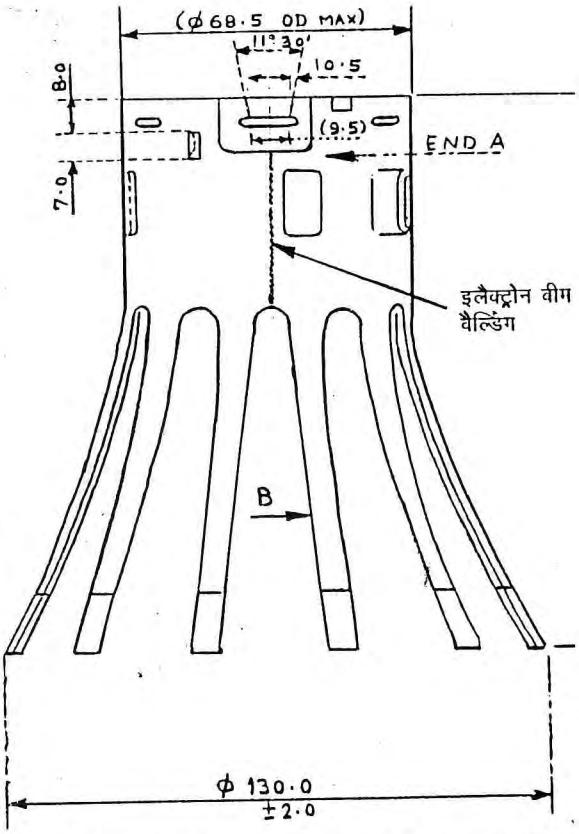

चित्र-7 : पंखुड़ियां खुली हुई स्थिति में कोरोनट के नीचे व ऊपर के व्यास को दर्शाती हुई

कोरोनट कलपुर्जे का यह निर्माण कार्य पुणे की आयुध अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशाला के सौजन्य से संपन्न किया गया। इस प्रकार से निर्मित कोरोनट की दीर्घकालीन उपयुक्तता को परखने के लिए इसे एक विशेष परीक्षण कक्ष में 6 माह से 1 वर्ष तक इस प्रकार रखा गया कि इसकी पंखुड़ियां एक प्लास्टिक कप द्वारा अपनी वास्तविक स्थिति में या दबाव की स्थिति में रहें। -30^0 से $+50^0$ से. के तापचक्रों व आर्द्रता के वातावरण में तथा दबाव की स्थिति में लगभग 9-10 माह तक रखने के पश्चात जब इन कोरोनटों को बाहर निकाला गया तो इन पर किसी विशेष कुप्रभावों का प्रमाण नहीं देखा गया। कोरोनट की उपयुक्तता की पुष्टि

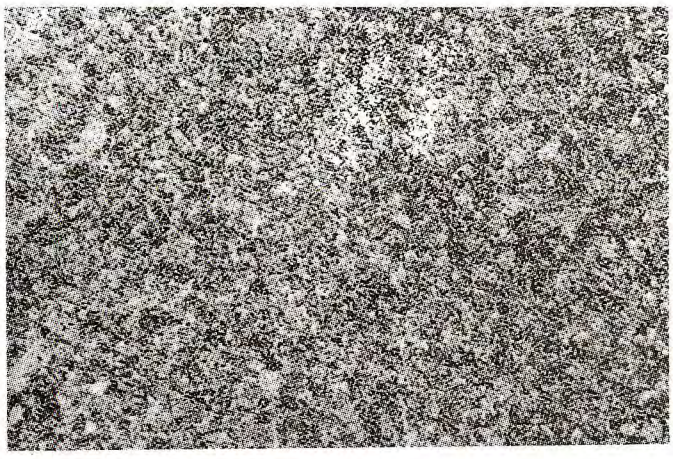

चित्र -8 : स्टेनलेस मारेंजिंग इस्पात की सूक्ष्म संरचना

के साथ-साथ नवविकसित इस्पात के गुणधर्मों पर किये जा रहे परीक्षणों के परिणाम भी सामने आये जिनसे यह सिद्ध हुआ कि यह इस्पात "कोरोनट" जैसे सामरिक महत्व के कलपुर्जे के लिए सर्वथा उपयोगी है तथा इसके औद्योगिक स्तर पर निर्माण को प्राथमिकता दी जाये ताकि क्लस्टर बंब के विकास व इसके प्रोटोटाइप निर्माण का कार्य शीघ्र संपन्न हो ।

इस्पात का औद्योगिक स्तर पर निर्माण तथा उपभोक्ता परख :

क्लस्टर बंब के प्रोटोटाइप निर्माण व आयुध की उपयुक्तता को पूरी तरह से परखने के लिए लगभग 3000 कोरोनटों की आवश्यकता अनुभव की गयी । मिधानी द्वारा निर्मित इस्पात के प्रमुख गुणधर्मों का मूल्यांकन करने के बाद इससे "कोरोनट" का निर्माण किया गया । इन कोरोनटों को प्रोटोटाइप क्लस्टर बंब के निर्माण में प्रयुक्त किया गया तथा अंतिम उपभोक्ता परख के दौरान ये सभी कोरोनट अपनी परीक्षा में खरे उतरे । चित्र-2 में कोरोनट को बंबलैट के साथ दिखाया गया है। एक क्लस्टर बंब में लगभग 140 बंबलैट होते हैं तथा इन सबका एक साथ बाहर निकलना अति आवश्यक है । ए. आर. डी. ई. द्वारा विकसित यह बंब फिर आर्डनैन्स उद्योग को निर्माण के लिए सौंप दिया गया तथा डी. एम. आर. एल. द्वारा कोरोनट इस्पात के मानक का अंतिम प्रारूप तैयार किया गया । इसके आधार पर मिधानी इस इस्पात का पिछले 5 वर्षों से निरंतर उत्पादन कर रहा है । लगभग 12 टन इस्पात अब तक निर्मित किया जा चुका है तथा मिधानी को लगभग 8 टन का और निर्माण करना है । डी. एम. आर. एल. व मिधानी के सहयोग से निर्मित यह विशेष इस्पात रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन की एक नवीन उपलब्धि है जिसके द्वारा हमारा देश न केवल विदेशी मुद्रा की निरंतर बचत कर रहा है, परंतु सामरिक महत्व के एक विशेष आयुध के विकास व निर्माण में भी सक्षम हुआ है ।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1996) में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

मस्तिष्क - प्रकृति की एक अनोखी देन

एस. वेंकटाचलम,

धातुकी अभियांत्रिकी एवं पदार्थ विज्ञान विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई - 400 076

विकसित मस्तिष्क के कारण ही मनुष्य समस्त जीव सृष्टि के शिखर पर आसीन है। इसी के ही कारण समस्त जीव सृष्टि पर मानव का आधिपत्य है। शरीर की विभिन्न क्रियाओं का संचालन और नियंत्रण करने वाला मस्तिष्क निश्चय ही प्रकृति की अनुपम भेंट है। मस्तिष्क की संरचना कैसी है ? मस्तिष्क की कार्यप्रणाली में व्यतिक्रम आ जाने से कौन से रोग उत्पन्न होते हैं ? मन और मस्तिष्क का क्या संबंध है, आदि की जानकारी दी गयी है इस लेख में।

मानव शरीर के विभिन्न अंगों में मस्तिष्क का सर्वाधिक महत्व है। आज के इस अत्याधुनिक युग में विज्ञान ने मानव शरीर के विभिन्न अंगों का कोई न कोई कृत्रिम अथवा प्राकृतिक विकल्प खोज लिया है। लेकिन, मस्तिष्क का विकल्प आज तक नहीं मिला है। वास्तव में मस्तिष्क की कार्यक्षमता ही प्राणी का जीवन है। मस्तिष्क हमारे शरीर के विभिन्न कार्यकलापों का नियंत्रण एवं संचालन करता है। अतः यह शरीर का अतिमूल्यवान अंग है। जिस प्रकार हम अपनी मूल्यवान वस्तुओं को तिजोरी-दर-तिजोरी में संभाल कर रखते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रकृति ने भी हमारे मस्तिष्क को अत्यंत सुरक्षापूर्वक हमारे शरीर में खोपड़ी में रखा है। इस खोपड़ी के सबसे ऊपरी भाग को कठोर खोपड़ी कहते हैं।

सामाजिक आर्थिक पहलू :

मस्तिष्क एक अत्यंत मृदु पदार्थ है। बाहर से देखने में यह एक कुंडलित पिंड की भांति दिखाई देता है। यह विभिन्न खंडों में विभाजित है। लघु मस्तिष्क (Cerebellum) और बृहद् मस्तिष्क (Cerebrum) इसके दो मुख्य भाग हैं (चित्र-1)। पूरा मस्तिष्क दो बराबर भागों में विभाजित है (चित्र-2)। इन्हें दायां और बांया गोलार्ध कहते हैं। मस्तिष्क में कई पदार्थों का समावेश है। किंतु दो ऐसे पदार्थ हैं जिनका उल्लेख अक्सर किया जाता है। मस्तिष्क के बाहरी हिस्से में दिखाई देने वाला भूरा रंग, भूरा पदार्थ कहलाता है। भीतरी हिस्सा श्वेत तंत्रिकाओं से निर्मित होने के कारण श्वेत पदार्थ कहा जाता है।

आजकल मस्तिष्क के बारे में काफी शोध कार्य हो रहे हैं। एक शोध के अनुसार गत 20 लाख वर्षों में मानव मस्तिष्क का आकार 1500 घसें. तक बढ़ा है और आज इसका वजन लगभग 1.5 किग्रा. है।

मानव मस्तिष्क में कुल मिलाकर लगभग 200 शंख (20 ट्रिलियन) कोशिकाएं हैं। यह भी बताया गया है कि मस्तिष्क में जितने संयोजन हों, बुद्धिमता उतनी ही अधिक होगी। एक खोज के अनुसार मानव मस्तिष्क की सभी तंत्रिकाओं को यदि श्रृंखलाबद्ध किया जाय तो उसकी लंबाई इतनी अधिक हो जायेगी कि वह चंद्रमा को छूकर वापस आ सकती है। लेकिन बुद्धिमत्ता के लिए तंत्रिकाओं की लंबाई, मोटाई या संख्या का उतना महत्व नहीं है। परिपथों का सर्वाधिक महत्व है।

जिस प्रकार शरीर के अन्य हिस्सों में रक्त प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मस्तिष्क में भी रक्त का प्रवाह होता है। उस रक्त में मौजूद शर्करा से मस्तिष्क अपनी ऊर्जा प्राप्त करता है। यद्यपि मस्तिष्क का वजन पूरे शरीर के 2% के बराबर ही होता है, फिर भी यह शरीर में उपलब्ध संपूर्ण ऑक्सीजन एवं ऊर्जा का 20% अकेले ही उपयोग करता है।

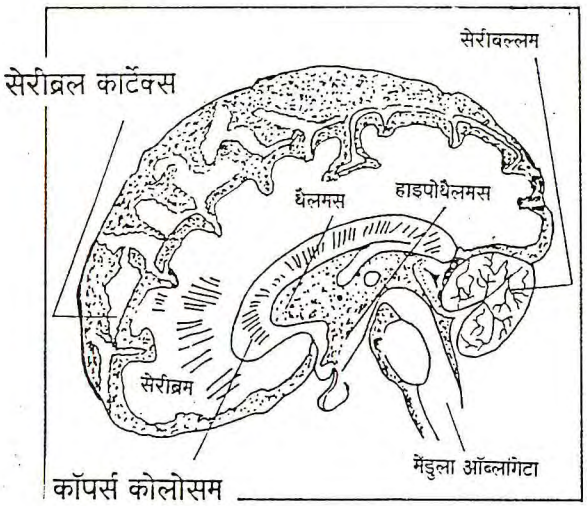

चित्र-1 : मस्तिष्क

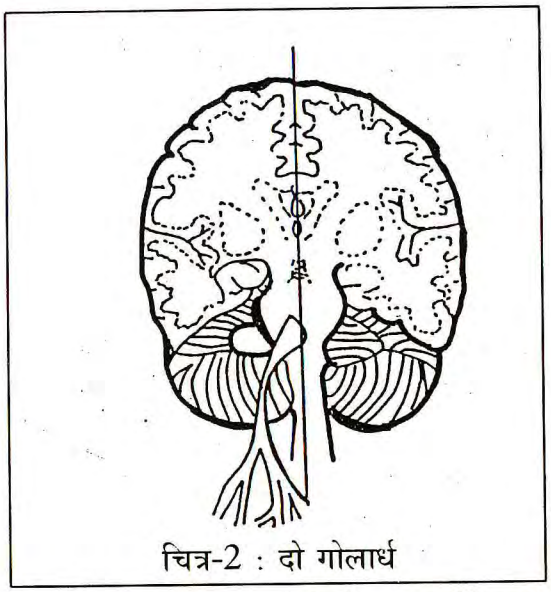

चित्र-2 : दो गोलार्ध

मस्तिष्क का महत्त्वपूर्ण अंग हैं- स्नायु कोशिकाएं, (चित्र-3) । इन्हें न्यूरॉन्स भी कहते हैं । ये मांस पेशियों के संचालन का निर्देश देती हैं। वे विभिन्न आकार प्रकार की होती हैं । सिनाप्सिस नामक संधिस्थलों के माध्यम से एक दूसरे से सूचनाओं का आदान - प्रदान करती

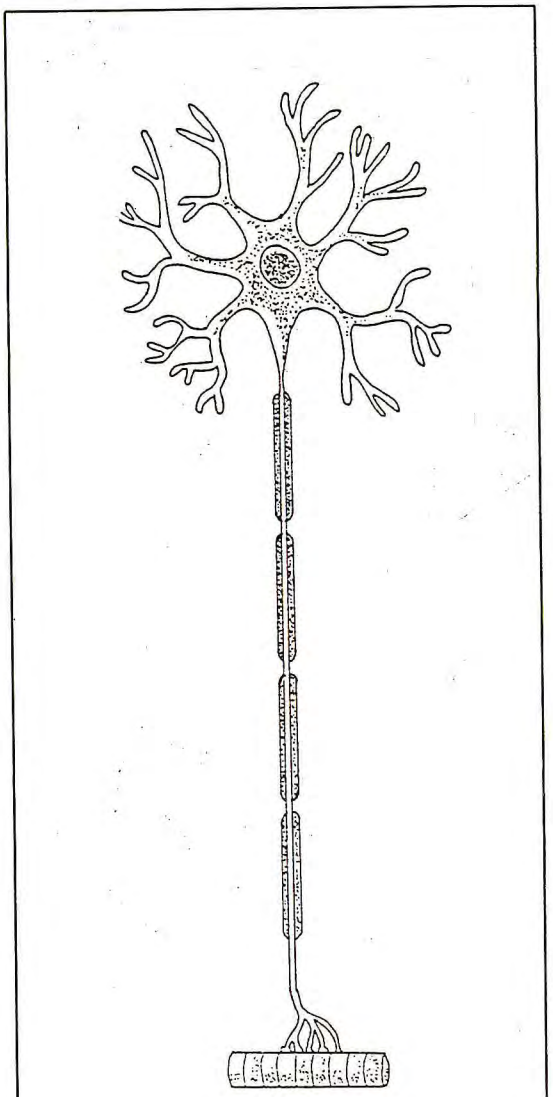

चित्र-3 : नर्व कोशिका

हैं। अधिक सिनाप्सिस होंगे तो अधिक रास्ते होंगे। अतः जिस मस्तिष्क में प्रति स्नायु कोशिका में जितने ही अधिक सिनाप्सिस होंगे उतना ही अधिक वह मस्तिष्क सूचनाओं के संसाधन एवं नयी सूचनाओं के अभिग्रहण हेतु सक्षम होगा (चित्र-4) ।

गर्भधारण के 12 वें दिन से मस्तिष्क की संरचना आरंभ हो जाती है। शरीर के सभी अंगों में यही अंग सबसे

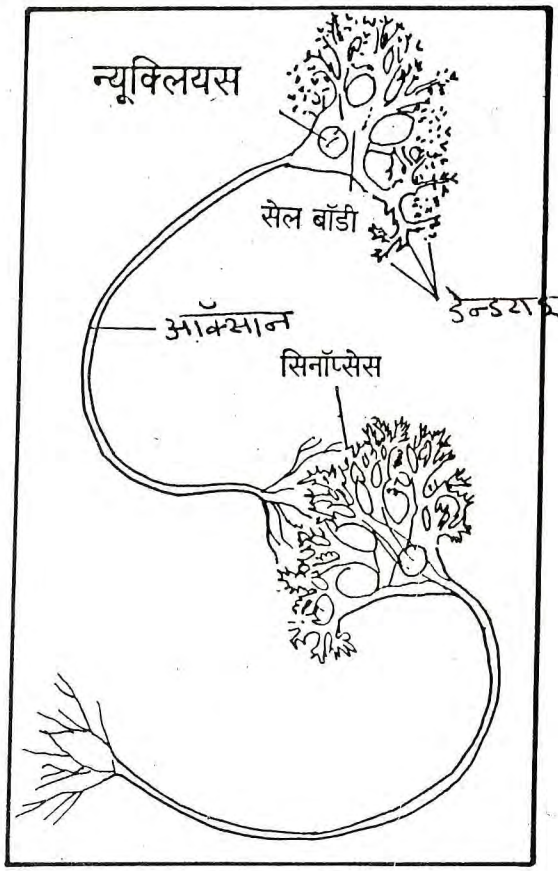

चित्र-4 : न्यूरॉन्स

पहले बनता है। बारह दिनों में एक कोशिका का रुपांतर करोड़ों कोशिकाओं में हो जाता है। बच्चे के जन्म के पश्चात उसके मस्तिष्क के विकास के लिए प्रथम पांच वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं।

मस्तिष्क अनुसंधान का इतिहास :

अपने शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली के लिए मनुष्य सदैव जिज्ञासु रहा है। दार्शनिक अरस्तु हृदय को विचारों का केंद्र बिंदु कहता था और मस्तिष्क को सिर को शांत रखने का कारण मानता था। यूनानवासी मस्तिष्क को केवल मांस का एक लोथड़ा मानते थे।

छठवीं और आठवीं शताब्दी के बीच पाश्चात्य देशों में मस्तिष्क के संबंध में औपचारिक और व्यापक अनुसंधान कार्य हुआ। एडिनबरो शहर के दो ऐसे चोर थे जो शवों को चुराकर डॉक्टरों को बेचा करते थे। डॉक्टर इन शवों की शल्य क्रिया करके उनके रोगों और मस्तिष्क के विभिन्न अंगों के सह-संबंधों पर अध्ययन किया करते थे। शवों का दायां भाग प्रभावित होने पर मस्तिष्क का बायां भाग प्रभावित हुआ करता था। मृत शरीर पर इस तथ्य की पुष्टि होने पर बाद में जीवित शरीरों पर बाहर से परीक्षा करने पर इस तथ्य की पुष्टि हुई (चित्र-5)। विद्युत तरंग प्रवाहित करके शरीर के विभिन्न अंगों से संचालन का अध्ययन और उससे मस्तिष्क के सहसंबंधों

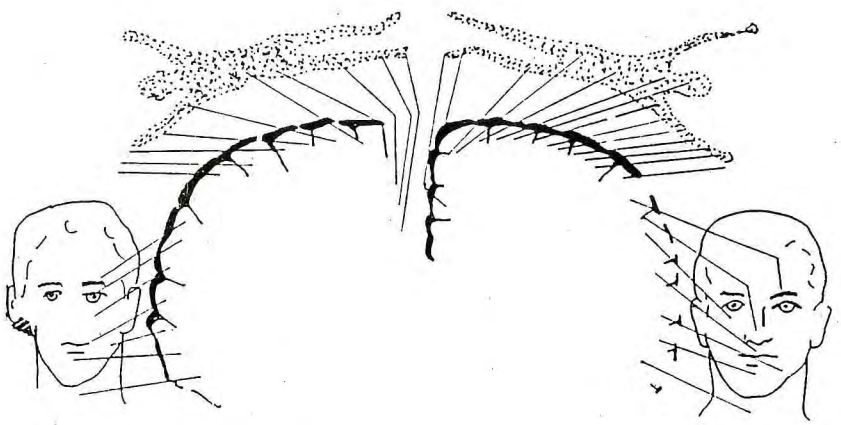

चित्र-5 : सेरीब्रल कॉर्टेक्स की मैपिंग

को ज्ञात किया जाता था। किस बिंदु पर विद्युत प्रवाहित करने से हास्य, कंपन अथवा क्रोध जैसी विभिन्न भावनाओं का जनन होता है इन सारी बातों का पता लगा लिया गया था। यदि शरीर के किसी भी हिस्से में किसी भी प्रकार की चोट लगे, विद्युत धारा प्रवाहित की जाय या हानि पहुंचाई जाये तो मस्तिष्क को तुरंत इसकी सूचना मिल जाती है, किंतु यदि मस्तिष्क पर कोई चोट पहुंचाई जाय या विद्युत प्रवाहित की जाय तो उसे उसकी बिल्कुल संवेदना नहीं होती है।

मस्तिष्क की कार्य प्रणाली :

मस्तिष्क के दोनों गोलार्ध 'कॉर्पस कोलोसम' (Corpus Colosum) नामक तंत्रिकाओं के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इन तंत्रिकाओं की कुल संख्या लगभग 30 करोड़ है। शरीर के दायें भाग का नियंत्रण बायें गोलार्ध के द्वारा और बायें भाग का नियंत्रण दायें गोलार्ध द्वारा होता है। ये दोनों गोलार्ध दो पूर्णत: भिन्न कार्यकलापों का नियंत्रण करते हैं। जहां दायां गोलार्ध हमारी सृजनात्मक क्षमता का नियंत्रण करता है, वहीं बायां गोलार्ध हमारी तार्किक क्षमता का नियंत्रण करता है। बायां गोलार्ध लेखन, वाचन एवं गणित के सवालों के हल करने तथा तार्किक कारणों के लिए प्रयुक्त होता है। दायां गोलार्ध कविता, लेखन, नृत्य, अभिनय इत्यादि कार्यकलापों का नियंत्रण करता है। वास्तव में हमारा मस्तिष्क चमत्कारों से परिपूर्ण है। यदि मस्तिष्क के किसी एक भाग को हानि पहुंचती है तो ऐसी स्थिति में ज्ञान और क्षमता दूसरे हिस्से में स्थानांतरित हो जाती है।

ऐसा देखा गया है कि पुरुष और महिला के मस्तिष्क में अत्यंत सूक्ष्म अंतर होता है। पुरुषों के मस्तिष्क में एक विशेष क्षमता यह होती है कि वे वस्तुओं के आकार, उनकी स्थिति आदि का काल्पनिक चित्र उभार सकते हैं। लड़कियां बहुत जल्दी बोलना सीखती हैं। पुरुषों में वाणी दोष अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में 'कार्पस कोलोसम' बड़ा होता है। यह स्थिति मस्तिष्क के दोनों गोलार्ध में सूचनाओं के आदान- प्रदान को संभवत: और व्यापक बनाती है।

इतना अनुसंधान होने के बावजूद भी आज भी हम मस्तिष्क के संबंध में बहुत कम जानते हैं। किंतु गत दस वर्षों के मस्तिष्क संबंधी अध्ययन से हमने उसके बारे में बहुत कुछ ज्ञात किया है जो सदियों के अध्ययन में ज्ञात न कर सके थे। आज की आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से हम मस्तिष्क के संबंध में व्यापक छान-बीन कर सकते हैं। फिर भी मस्तिष्क के रहस्यों को जानना आज भी असंभव है। 1991-2000 के दशक को मस्तिष्क दशक मानते हैं।

मस्तिष्क का विद्युतधर्मी कार्यकलाप :

जन्म से लेकर मृत्यु तक मस्तिष्क विद्युत की भांति सक्रिय रहता है। व्यक्ति के जागने, सोने अथवा ध्यानस्थ होने के आधार पर कार्यकलापों की तीव्रता में भिन्नता हो सकती है। मानसिक दशा पर आधारित मस्तिष्क के विभिन्न विद्युतीय कार्यकलापों को 'इन्सेफेलोग्राम' नामक उपकरण के माध्यम से अभिलिखित किया जा सकता है। इसके परिणाम को इलेक्ट्रो इन्सेफेलोग्राम (EEG) कहते हैं। पता चला है कि मस्तिष्क द्वारा चार प्रकार की तरंगें उत्पन्न की जाती हैं :-

तरंग	चक्र प्रति मिनट	तरंग-प्रकार	अवस्था
डेल्टा	0.5-3.5	निम्न	*गहन निद्रा*
थीटा	3-7	अपेक्षाकृत धीमी	*निद्रा*
अल्फा	8-13	अपेक्षाकृत तेज़	*जागृत, आंखें बंद विश्रांति*
बीटा	13-25	तेज़	*जागृत एवं सावधान (एकाग्रचित्त)*

जब हम पूर्णत: जागृत होते हैं, लिखते हैं, पढ़ते या बातचीत करते हैं तब हम बीटा स्थिति में होते हैं। अल्फा की दशा में हम अर्द्ध होश की स्थिति में होते हैं। बीटा स्थिति से अल्फा स्थिति तक जाने के लिए ही हम तपश्चर्या करते हैं। यदि EEG में हमें यह पता चलता है कि प्रमस्तिष्क किसी भी प्रकार की मानसिक तरंग नहीं पैदा करता है तो इसे फ्लैट EEG कहते हैं। इसका तात्पर्य होता है कि संबंधित व्यक्ति मर चुका है।

पारंपरिक रुप में हृदय गति रुकने और श्वास रुकने की स्थिति को मृत्यु माना जाता है। किंतु हाल ही में मृत्यु

की एक नयी परिभाषा आयी है । इसे "मस्तिष्क तंत्र मरण" कहते हैं । यह स्थिति तब आती है जब मस्तिष्क आघात, रक्त स्राव अथवा ऐसा कैंसर जिसकी क्षतिपूर्ति असंभव होने के कारण मस्तिष्क पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो जाता है । जब व्यक्ति को "मस्तिष्क मरण" के रूप में घोषित कर दिया जाता है तब उसके शरीर के विभिन्न अंगों को प्रत्यारोपण के लिए निकाला जा सकता है ।

मस्तिष्क संबंधी बीमारियां :

डेमेन्शिया, अलजेयमर्स, मिरगी, स्कीज़ोफ्रेनिया जैसी कुछ बीमारियों का संबंध मस्तिष्क से होता है । अलजेयमर्स और पार्किन्सन्स जैसी बीमारियां ह्रासमान मस्तिष्क की बीमारियां हैं । इस क्षेत्र में व्यापक शोधकार्य हो रहा है ।

डेमेन्शिया विस्मृति संबंधी बीमारी है जो ढलती उम्र के कारण अधिक होती है । किंतु अलजेयमर्स से ग्रसित रोगी इस कदर चीज़ों को भूलने लगता है कि उसका जीवन दूभर हो जाता है । मस्तिष्क की बीमारियों में यह सबसे ख़राब बीमारी है । बहुत से लोग चाय बनाना और कपड़े पहनना तक भूल जाते हैं । रसोई घर से सोने के कमरे तक जाने का रास्ता भी भूल जाते हैं ।

व्यक्ति निकट अतीत की स्मृतियां भूलने लगता है । आरंभिक अवस्था में रोगी को एक दिन पूर्व तक की स्मृति नहीं रहती । गहरी स्मृतियां भी धीरे-धीरे धुंधली पड़ जाती है । इससे प्रभावित रोगी अपनी पत्नी और बच्चों तक के नाम भूल सकता है । पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति रोनोल्ड रीगन भी अलजेयमर्स के रोगी थे । इस रोग से प्रभावित लगभग 40% लोग 80 वर्ष से अधिक आयु के होते हैं । इस बीमारी को सजीव मृत्यु माना जाता है । इस बीमारी का कारण और निवारण अब तक ज्ञात नहीं हैं ।

शोधकर्ताओं ने पाया है कि अलजेयमर्स रोगियों में एसिटिलकोलिन नामक न्यूरोट्रॉन्समिटर 10% तक ही पैदा होती है । पोस्टमार्टम अध्ययनों से भी पता चला है कि मस्तिष्क में एल्युमिनियम की बहुत अधिक मात्रा विद्यमान होती है । इससे मस्तिष्क के ऊतक 40 गुना तेज़ गति से नष्ट हो जाते हैं ।

पार्किन्सन्स की बीमारी में व्यक्ति के मस्तिष्क का वही हिस्सा नष्ट होता है जो चलने की गति का विकास करता है । उन्हें अपनी संचालन गति के नियंत्रण में अत्यंत कठिनाई का सामना करना पड़ता है । शोधकर्ताओं ने अपने अनुसंधान कार्य में पाया है कि ऐसे रोगियों में डोपामाइन (dopamine) का उत्पादन ही नहीं होता है । डोपोमाइन उत्पादन करने वाली कोशिकाओं को मस्तिष्क में प्रत्यारोपित किया जा सकता है । इन कोशिकाओं की प्राप्ति गर्भपात हुए बच्चों से की जाती है । ये कोशिकाएं ताजी होती हैं । अतः इनमें परिवर्तन होना संभव है और ये नये संयोजन बनाने में सक्षम होती हैं ।

हमारे मस्तिष्क में निरंतर एक विद्युत तरंग प्रवाहित होती रहती है । जब इनमें कोई बाधा आती है तब बेहोशी का दौरा आता है । बार-बार आने वाले दौरे को मिरगी कहते हैं । लगभग एक प्रतिशत जन संख्या इस बीमारी का शिकार है । भारत में तो 5-9 प्रति हज़ार लोग इससे प्रभावित हैं । मस्तिष्क में घाव, हेड ट्रौमा (head trauma), मेनिनजाइटिस इत्यादि संक्रमण इस बीमारी के कारण हैं ।

स्कीजोफ्रेनिया मस्तिष्क की एक अन्य घातक व्याधि है । अकेले अमरीका में ही लगभग 25 लाख लोग इसके शिकार हैं । इसका बीजारोपण भ्रूणावस्था में ही हो जाता है जब मस्तिष्क का निर्माण हो रहा होता है । तंत्रिका कोशिकाएं बढ़ती हैं, विभाजित होती हैं और एक दूसरे से संयोजन स्थापित करती हैं । ऐसा देखा गया है कि न्यरॉन्स का विकास प्रति मिनट 2,50,000 की दर से होता है । संभवतः बच्चे के जन्म के पूर्व ही लगभग आधे नष्ट हो जाते हैं । संयोजन में कुछ गड़बड़ी हो जाती है जो इस बीमारी का कारण बनती हैं । अतः गर्भावस्था के दौरान अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए और धूम्रपान और मद्यपान नहीं करना चाहिए । गर्भावस्था के दौरान इन्फ्ल्यूएंजा हो जाने अथवा कुपोषण आदि के कारण भी संयोजन में कुछ गड़बड़ी हो जाती है जो आगे चलकर बीमारी का कारण बनती है ।

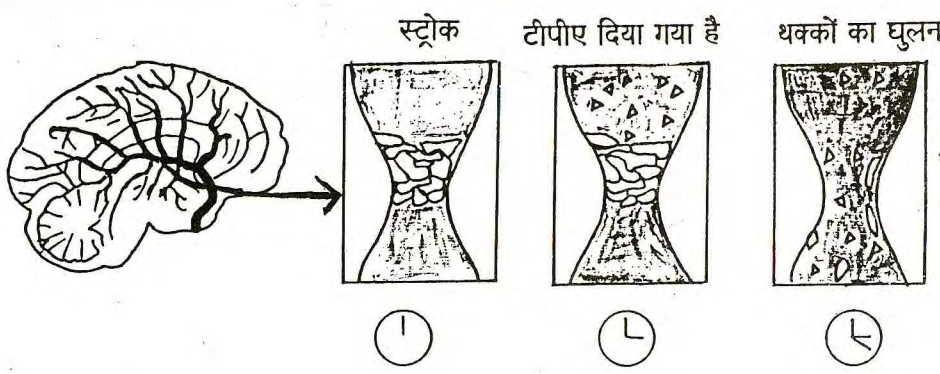

चित्र-6 : स्ट्रोक और निवारण

कुछ लोगों में आत्महत्या की प्रवृति होती है। शोधकर्ताओं के अनुसार ऐसे रोगी में एक साधारण व्यक्ति की अपेक्षा मस्तिष्क में 'न्यूरोट्रांसमिटर प्रोटीन का 20-25% कम स्राव होता है।

अक्सर शिराओं के अवरोध मस्तिष्क की ऑक्सीजन में रक्त की आपूर्ति में बाधक बनकर 'स्ट्रोक' का कारण बनते हैं। यदि रक्त बिंदुओं (अवरोधों) को घुलाया जा सके तो रक्त का प्रवाह पुनः संभव हो सकता है। हाल ही में शोधकर्ताओं ने पता लगाया है कि टिश्यू प्लासमिनोजन एक्टीवेटर (TPA) नामक औषधि को रक्त नलिकाओं में सूई द्वारा पहुंचा कर रक्त के थक्कों को घुलाया जा सकता है (चित्र-6)।

हमारे देश में भी मस्तिष्क संबंधी बीमारियों के कारणों को ज्ञात करने के लिए अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। हमारे देश का पहला "ब्रेन बैंक" नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरो साइंसेस (NIMHANS) बैंगलूर में फरवरी 1996 से आरंभ हो चुका है। यहां एक साथ लगभग 300 मस्तिष्कों का संग्रह करने की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

मस्तिष्क प्रत्यारोपण :

अब तक संपूर्ण मस्तिष्क का प्रत्यारोपण संभव नहीं है पाया है। किंतु मस्तिष्क की कुछ कोशिकाओं का प्रत्यारोपण अभी हाल ही से होने लगा है। क्या संपूर्ण मस्तिष्क प्रत्यारोपण संभव है ? इसके क्या फायदे और नुकसान हैं ? हृदय प्रत्यारोपण और मस्तिष्क प्रत्यारोपण में क्या अंतर है ? चलें इन प्रश्नों पर विचार करें।

यदि आप हृदय प्रत्यारोपित व्यक्ति को देखें तो उसके आचार-व्यवहार को देखकर तथा वाणी को सुनकर यह नहीं कह सकते कि उसके शरीर में किसी और का दिल लगा है। किंतु एक रोचक प्रश्न यह है कि यदि A का मस्तिष्क B में लगाया गया है तो नया व्यक्ति A एवं B में से कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर आप को काफी सोच-विचार करके देना पड़ेगा। व्यक्ति की बुद्धिमत्ता, स्मृति, अहंकार इत्यादि उसके मस्तिष्क से ही पैदा होते हैं। अतः यदि A का मस्तिष्क B में लगाया जाता है तो, यद्यपि वह व्यक्ति B की तरह है, किंतु वास्तव में वह A ही है। मान लो A एक शिक्षक है। उसका मस्तिष्क एक 'मैकेनिक' में प्रत्यारोपित किया गया है। अगले दिन से मैकेनिक हाथ में चाक लेकर ब्लैकबोर्ड पर एक शिक्षक की तरह लिखने लगेगा। शिक्षक का मस्तिष्क मैकेनिक के शरीर में प्रत्यारोपित कर दिया गया है कहने की अपेक्षा हम यह नहीं कह सकते कि मैकेनिक का शरीर प्रत्यारोपित कर दिया गया है ? इससे भी विचित्र परिस्थितियां हो सकती हैं। एक ऐसी स्त्री के शरीर की कल्पना कीजिए जिसमें पुरुष का मस्तिष्क प्रत्यारोपित किया गया है। प्रत्यारोपण के पश्चात यह शरीर स्त्री है या पुरुष ? उसकी बुद्धि तो पुरुष की भांति होगी किंतु उसके शरीर की विशिष्टताएं एक स्त्री की ही रहेंगी। इससे कई समस्याएं

उठ खड़ी हो सकती हैं।

हमारे शरीर में अनेक प्रकार की ग्रंथियां होती हैं जिनसे निकलनेवाला द्रव पदार्थ रक्त के साथ मिलकर पूरे शरीर में प्रवाहित होता है। पुरुष के मस्तिष्क से बहनेवाले द्रव से स्त्री शरीर प्रभावित होगा। वैज्ञानिक आधार पर इसकी पुष्टि होनी है। तब तक हम पुरुष के शरीर में पुरुष मस्तिष्क और स्त्री के शरीर में स्त्री मस्तिष्क के प्रत्यारोपण की ही बात करें।

आइए, अब मस्तिष्क प्रत्यारोपण की प्रौद्योगिकी पर एक नज़र डालते हैं। शल्य चिकित्सा की दक्षता और कई प्रकार के उपकरण आज उपलब्ध हैं। इस कार्य को करने के लिए विशेषज्ञ भी मौजूद हैं। मस्तिष्क के दोनों ओर कुल 24 तंत्रिकाएं होती हैं। प्रत्येक पक्ष में 12 तंत्रिकाएं। उन्हें काटना और जोड़ना पड़ता है। इसी प्रकार 4 रक्त नलिकाएं मस्तिष्क में घुसती हैं। उन्हें भी सीलना पड़ेगा। इसी प्रकार मेडुला आब्लांगेटा को भी ठीक प्रकार से मेरू-रज्जु पर स्थापित करना पड़ेगा। इस प्रकार की शल्य क्रिया में लगभग 30-40 घंटे लगते हैं जो बड़ी दक्षतापूर्वक करनी पड़ती है। इतना होने पर भी इसके पूर्णतः सफल होने में आशंका बनी रहती है। इसकी असफलता का कारण भी बड़ा रोचक है। इस प्रकार से प्रत्यारोपित मस्तिष्क से तंत्रिकाओं में ऊर्जा का प्रवाह नहीं हो पाता है। यही प्रकृति का सबसे बड़ा रहस्य है। इस रहस्य को समझने में मानव अभी तक सफल नहीं हो सका है। जब एक बार तंत्रिका कट जाती है तो वह दुबारा जोड़ने पर भी कार्य करने से इनकार कर देती है। विद्युत और रासायनिक ऊर्जा का प्रवाह कटने पर तंत्रिकाओं में कंपन होना चाहिए। किंतु कटी हुई तंत्रिकाओं को बड़ी दक्षता से जोड़ने के बावजूद भी रासायनिक और विद्युत ऊर्जा का प्रवाह नहीं होता है। ऊर्जा का प्रवाह क्यों नहीं होता है, यह अभी भी रहस्य बना हुआ है। एक बार यदि वैज्ञानिक इस अवरोध को पार कर लेंगे तो अगले ही दिन से मस्तिष्क प्रत्यारोपण संभव हो जायेगा।

मस्तिष्क और स्मृति :

हम जीवन की अनेक घटनाओं को भूल जाते हैं और यह भूलना उम्र के साथ-साथ बढ़ता रहता है। 30 वर्ष की आयु तक मस्तिष्क में प्रतिदिन हज़ारों न्यूरॉन मर जाते हैं। शरीर के अन्य भागों की कोशिकाओं की तरह मस्तिष्क की कोशिकाओं का प्रतिस्थापन नहीं हो सकता। इस प्रकार जब हम 40 वर्ष की उम्र तक पहुंचते हैं तो हमारे मस्तिष्क का वजन युवावस्था की अपेक्षा लगभग सात प्रतिशत कम हो जाता है। मस्तिष्क का कुछ भाग अन्य भागों कि अपेक्षा सेरीब्रल कार्टक्स से आच्छादित हो जाता है। इससे इसकी लगभग 45% कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं। कोशिकाओं से मस्तिष्क तक सूचनाओं के आदान प्रदान में न्यूरोट्रॉन्समीटर रसायन संदेशवाहक का कार्य करता है। बढ़ती उम्र के साथ इनका उत्पादन भी कम हो जाता है। सूचनाओं का संवहन करने के लिए एजेन्टों की संख्या कम होने के कारण सूचनाओं को मूर्तरूप देने में अधिक समय लगता है।

हमारे पास विभिन्न प्रकार की स्मृतियाँ हैं और मस्तिष्क का अलग-अलग हिस्सा इसके लिए उत्तरदायी है। जब हम युवा होते हैं तो कई प्रकार के काम एक साथ कर सकते हैं, किंतु 40 और 50 वर्ष की आयु में इस क्षमता में थोड़ी कमी आ जाती है। जब 80 वर्ष के हो जाते हैं तो यह भी भूल जाते हैं कि अभी-अभी क्या बात कर रहे थे।

हाल ही के अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि सिगरेट पीने से अल्पावधि स्मृति और प्रखर होती है। इसका कारण यह है कि निकोटिन मस्तिष्क की स्मृति क्षमता को संवर्धित कर देता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें सिगरेट पीने को बढ़ावा देना चाहिए। धूम्रपान हृदय और फेफड़ों के लिए अत्यंत खतरनाक है।

मस्तिष्क और मन :

हमारा स्थूल शरीर पांच भूतों से बना है। जब शरीर मर जाता है, तो किसी तरह से भी उसे जिंदा नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि मरने के बाद सिर्फ स्थूल शरीर रह जाता है और सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ बाहर निकल जाता है। सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि और अहंकार से बना है। क्या मनुष्य की बौद्धिक और सृजनात्मक क्षमताओं को मस्तिष्क की कार्य विधि के आधार पर पूर्णतः समझा जा सकता है ? नोबेल पुरस्कार से सम्मानित रोजर

स्पेरी का मानना है कि चेतनावस्था मस्तिष्क में घटनेवाली भौतिक घटनाओं की अपेक्षा कुछ अतिरिक्त चीज़ है। एक अन्य नोबल पुरस्कार विजेता एकेल्स का कहना है- - मस्तिष्क की कार्य विधि मानसिक घटनाक्रिया को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है किंतु वह यह भी मानता है कि चेतनता नामक भी कोई चीज़ है किंतु वह अमूर्त ही है। अतः एकेल्स आत्मा की विद्यमानता से सहमत हैं।

मन बहुत शक्तिशाली है। उपनिषद में कहा गया है कि मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण भी मन है। श्रीमद भगवदगीता में भी कहा गया है कि मन सर्वश्रेष्ठ मित्र भी है और सबसे बड़ा शत्रु भी। यह भी बताया गया है कि मन स्वभाव से चंचल और अस्थिर है।

जहां चाह वहां राह, यह एक पुरानी कहावत है। आदमी अगर चाहे तो कोई भी काम असंभव नहीं होता है। विश्वास से पर्वतों को भी हटाया जा सकता है, यह भी एक कहावत है। लेकिन सवाल यह है कि क्या विश्वास से असाध्य रोगों का इलाज किया जा सकता है। कहा जाता है कि मनुष्य अपनी मस्तिष्क शक्ति का उपयोग करके वेदना, बीमारी व चिंता से मुक्त हो सकता है।

ऐसा माना जाता है कि मस्तिष्क की सहायता से बीमारियों का इलाज किया जा सकता है। इलाज में प्रार्थनाओं से सहायता मिलती है। हमारा प्रतिरक्षण तंत्र मस्तिष्क को यह बताता है कि शरीर पर किस प्रकार का आक्रमण हुआ है और उसका परिणाम क्या है। तब मस्तिष्क प्रतिरक्षातंत्र को शत्रु से लड़ने के लिए उपयुक्त आदेश देता है। हमारा मस्तिष्क तंत्रिकाओं के माध्यम से संक्रमण के विरुद्ध प्रतिरक्षा को और सुदृढ़ करने का संकेत भेज सकता है और शरीर को रोगों से लड़ने के लिए रसायनों के उत्पादन का भी निर्देश दे सकता है।

अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि मस्तिष्क और प्रतिरक्षा तंत्र में बहुत घनिष्ठ परिपथ है। अनेक योगियों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि एक शक्तिशाली मस्तिष्क, मस्तिष्क के विद्युतीय कार्यकलापों का नियंत्रण और सुधार कर सकता है।

आध्यात्मिक उपचार की क्षमता हम सबमें हैं। हमारे मस्तिष्क के उस भाग को जहां आध्यात्मिक उपचार की कुंजी होती है उसे उच्चतर आत्मा (हायर सेल्फ) कहते हैं। मस्तिष्क की इस गुणता को ऊर्जाकृत मस्तिष्क (एनरजाइज्ड माइंड) कहते हैं।

अधिकांश मनुष्य अपना जीवन उस क्षेत्र में व्यतीत करते हैं जिसे चेतन मस्तिष्क कहा जाता है। मस्तिष्क के इस क्षेत्र में आपके सभी भय, आपकी स्वनिर्धारित सीमाएं और सभी शब्द जैसे कि असाध्य, असंभव, निराशा आदि संचित रहते हैं। सचेतन मस्तिष्क को स्वयं पर बहुत कम विश्वास होता है। बचपन से मानव पर जो सीमाएं लगा दी जाती हैं वह उन पर विश्वास करने लगता है। आपके अस्तित्व का निष्क्रिय क्षेत्र आपकी आत्मा के उच्च क्षेत्र के महत्व को स्वीकार नहीं करता, जो सीमाओं को नहीं मानता और कुछ भी प्राप्त कर सकता है। बीमारी और सभी किस्म के रोग मनुष्य के जड़ सोच-विचार के कारण उसके शरीर में प्रवेश करते हैं। ऊर्जाकृत मस्तिष्क, सचेतन मस्तिष्क के इस सोच विचार को कुछ उसी तरह काट देता है जिस तरह लेज़र किरणें बहुत से पदार्थों को काट देती हैं। जीवन की उच्च शक्ति को विश्वास की जरूरत नहीं है क्योंकि वह स्वयं विश्वास को जन्म देती है। उच्च शक्ति हमेशा यह जानती है कि भौतिक शरीर पर उसका पूरा अधिकार है और वह दुख-तकलीफ देने वाली किसी भी बीमारी, चोट को नष्ट कर सकती है।

आज के वैज्ञानिक अलग-अलग अनुभवों के आधार पर मस्तिष्क को समझने का प्रयास कर रहे हैं। आनेवाली शताब्दी में हम मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। बुद्धिमत्ता, खोज और आचरण में अनुवांशिकता किस प्रकार प्रभावकारी है इन सब तथ्यों को ठीक से समझने के लिए हमें अभी और समय लगेगा।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1996) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

पदार्थों को जोड़ने की नयी तकनीक– विसरण जुड़ाई

गजानन काले,

पदार्थ विज्ञान प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400 085

विज्ञान, अभियांत्रिकी व तकनीकी के अनेक क्षेत्रों में समाज अथवा विभिन्न पदार्थों को आपस में जोड़ने की आवश्यकता अनिवार्य होती है और संपूर्ण इकाई की कार्यक्षमता व सेवाकाल का आकलन जोड़ के गुणधर्मों पर ही निर्भर करता है। दो पदार्थों को जोड़ने की गलनीय वेल्डिंग, ब्रेजिंग व सोल्डरिंग (टकाई) जैसी प्रचलित विधियों की अपनी मर्यादाएं हैं, अतः इनका कार्य क्षेत्र भी कुछ सीमित पदार्थों के बीच ही सिकुड़ा हुआ है। पदार्थों को जोड़ने की अनोखी व नयी तकनीक 'विसरण जुड़ाई' द्वारा विभिन्न गुणधर्मों व आकार वाले पदार्थों के परस्पर जोड़ बहुत कम लागत में, बगैर किसी प्रदूषण समस्या के संभव हैं। परीक्षण के आधार पर विसरण जोड़ को अन्य विधियों से बनाये गये जोड़ की तुलना में हर तरह से श्रेष्ठ पाया गया है। इस अनोखी विधि का हमने अपनी प्रयोगशाला में विकास व प्रयोग किया है। जरकलॉय-जरकलॉय व स्टेनलेस स्टील के बीच इस विधि द्वारा बनाया गया जोड़ हमारे देश की नाभिकीय भट्टी में व्यवहारिक रुप से उपयोगी होने जा रहा है। प्रस्तुत लेख में विसरण जुड़ाई के विभिन्न पहलुओं और इसकी अपार उपयोगिता पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

आधुनिक अभियांत्रिकी में दो भिन्न अभिलक्षणिक पदार्थों को जोड़ने की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता सामान्य क्षेत्रों से लेकर नाभिकीय, अंतरिक्ष जैसे प्रगत क्षेत्रों में भी होती है। उदाहरण के तौर पर रसोई में स्टेनलेस स्टील के बर्तन उपयोग में लाये जाते हैं जो साफ-सुथरे, संक्षारण प्रतिरोधक एवं पकाये जाने वाले पदार्थों पर अभिक्रियाहीन होते हैं। परंतु स्टेनलेस स्टील का, ऊष्मा का अच्छा चालक न होने के कारण काफी मात्रा में ईंधन की खपत होती है। ईंधन की बचत करने के लिए ऐसे स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के निचले हिस्से में तांबे जैसे ऊष्मा के सुचालक की परत लगा दी जाती है। उसी प्रकार नाभिकीय रिएक्टरों के क्रोड (core) में न्यूट्रॉन गुणधर्मों के लिए जिरकालॉय का प्रयोग होता है। जिरकालॉय स्टेनलेस स्टील की अपेक्षा महंगा है। इसलिए क्रोड के बाहर स्टेनलेस स्टील का प्रयोग होता है और जिरकालॉय को स्टेनलेस स्टील से जोड़ने की आवश्यकता होती है। जोड़े जाने वाले पदार्थों के भौतिक, रासायनिक तथा यांत्रिक गुण पूर्णतः भिन्न होते हैं। दो पदार्थों को जोड़ने की गलनीय वेल्डिंग, ब्रेजिंग जैसी प्रचलित विधियों की कुछ सीमाएं होती हैं और ये इन भिन्न गुणधर्मीय पदार्थों को जोड़ने के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसे पदार्थों की गलनीय वेल्डिंग करने पर गलन क्षेत्र में भंगुर अंतरा-धातुक (Inter metallic) संयुक्तों का निर्माण होता है जिससे जोड़ों के बल का ह्रास होता है। इन पदार्थों के तापीय प्रसार गुणांक में काफी अंतर होने एवं स्फटिक संरचना में अंतर होने से जोड़ों में अवशिष्ट तनाव रहता है जिससे उनको ठंडा करने पर जोड़ों में दरारें पड़ने की संभावना होती है। अत्यंत छोटे;

भिन्न गलनांक वाले पदार्थों को जोड़ने के लिए भी गलनीय वेल्डिंग का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक नयी तकनीक जिसे विसरण जुड़ाई कहते हैं, का विकास हुआ है।

विधि :

विसरण जुड़ाई एक ऐसी विधि है जिसमें जोड़े जाने वाले पदार्थों को उच्च तापमान और दाब पर अपेक्षित समय तक रखने से संपर्क सतह पर विसरण होकर जोड़ का निर्माण होता है। विसरण जोड़ का निर्माण एक निर्वात तप्त दाब यंत्र में संपन्न होता है। जोड़े जाने वाले पदार्थों की सतहों को 1 माइक्रोमीटर तक परिमार्जित किया जाता है। एक निर्वात कक्ष में सज्जित सतहों को संपर्क में रखा जाता है। पदार्थों पर द्रवचालित पद्धति से दबाव दिया जाता है। संपर्क सतह के रिक्त स्थानों को भरने तथा सुदृढ़ संपर्क बनाने के लिए पर्याप्त दाब दिया जाता है। भट्टी का तापमान शीघ्र गलीय घटक के गलनांक के 50% से 70% तक बढ़ाया जाता है। संघटन को इस दाब तथा तापमान पर यथा आवश्यक समय तक रखा जाता है। इतने समय में संपर्क सतह के आर-पार परस्पर विसरण हो कर जोड़ बन जाता है।

विसरण जोड़ तीन विधियों से बनाये जा सकते हैं: (1) ठोस अवस्थीय विसरण जोड़, (2) परिवर्तनीय द्रवण क्रांतिक तरल प्रावस्थीय जोड़, तथा (3) परिवर्तनीय तरल प्रावस्थीय जोड़।

ठोस अवस्थीय विसरण जोड़ प्रणाली :

इस प्रणाली में दोनों पदार्थ ठोस अवस्था में होते हैं। जब दोनों धातुओं में परस्पर विसरण होता है तब उनके रासायनिक गुणधर्मों के अनुसार ठोस विलयन बनता है या अंतराधातुक संयुक्त बनते हैं। ये अंतराधातुक संयुक्त भंगुर होते हैं तथा विसरण क्षेत्र में धारियों में बनते हैं। इन संयुक्तों के निर्माण से जोड़ कमजोर होता है। प्रावस्था आरेख देखकर कुछ स्थितियों में योग्य तापमान पर जोड़ने की क्रिया करने से या योग्य अंतस्थ परतों का प्रयोग करके इन अंतराधातुक संयुक्तों का बनना रोका जा सकता है। इन परतों का चयन उनकी विसरणशीलता एवं प्रावस्था आरेखों का अध्ययन करके किया जाता है। इसके अलावा कुछ अन्य परिस्थितियों में भी अंतस्थ परतों का प्रयोग अनिवार्य होता है। उच्च तापीय मिश्र धातु, टूल स्टील जैसे बहुत कठोर पदार्थों की सतह को सामान्य दाब से समतल बनाना असंभव होता है। इन परिस्थितियों में सहज विरूपीय परतों का उपयोग करके सतह के रिक्त स्थानों को भरकर सुदृढ़ संपर्क बनाते हैं। जोड़े जाने वाले दोनों पदार्थों के तापीय प्रसार गुणांक में यदि अधिक अंतर हो तो मध्यवर्ती तापीय प्रसार गुणांक वाली परत का उपयोग करके जोड़ों में अवशिष्ट तनाव कम करते हैं। मूल तत्वों के विसरण से मूल पदार्थों की रासायनिक रचना बदल सकती है। योग्य अंतस्थ परत को विसरण अवरोधक के रूप में प्रयोग करके अवांछनीय मूल तत्वों का हानिप्रद विसरण रोका जा सकता है। जोड़े जाने वाले पदार्थों में परस्पर विसरण असंभव हो तो ऐसे पदार्थ की परत काम में लायी जाती है जिसका दोनों मूल पदार्थों में परस्पर विसरण संभव हो।

इस प्रणाली में सतह की पूर्वसज्जा आवश्यक है और यह जोड़ साधारण तापमान पर तथा लंबे समय के लिए करते हैं जिससे विसरण में सुविधा होती है।

परिवर्तनीय द्रवण क्रांतिक तरल प्रावस्थीय जोड़ प्रणाली :

इस प्रणाली में जोड़ने की क्रिया को निम्नतम द्रवण क्रांतिक गलन तापमान से ऊपर के तापमान पर संपन्न किया जाता है। इस विधि में संपर्क सतह पर द्रवण क्रांतिक द्रव तैयार होता है। द्रवण क्रांतिक अभिक्रिया से अंतराधातुक संयुक्तों का निर्माण होता है। परंतु अभिक्रिया कम समय में पूर्ण होने से अंतराधातुक संयुक्त कम मात्रा में तैयार होते हैं। इसके अलावा ये संयुक्त धारियों में बनने की अपेक्षा द्रवण क्रांतिक द्रव में बिखरे हुए होते हैं। इससे जोड़ों को प्रबलता मिलती है। प्रयोग में लाये गये दाब से ज्यादातर द्रव निष्कासित किया जाता है। इससे संयुक्तों की मात्रा और कम हो जाती है। यद्यपि इस विधि में ठोस अवस्थीय जोड़ प्रणाली की अपेक्षा उच्च तापमान लगता है परंतु तरल अवस्था में शीघ्र विसरण के कारण क्रिया

प्राय: कम समय में पूर्ण होती है। इस विधि में सतह की पूर्वसज्जा आवश्यक नहीं होती। जटिल एवं अनियमित ज्यामितीय आकार की वस्तुओं पर एक समान दाब देना असंभव होता है। ऐसी वस्तुओं को इस प्रणाली से जोड़ा जा सकता है। इस विधि में तैयार हुआ द्रव रिक्त स्थानों में बहकर उत्तम संपर्क बनाता है और एक अच्छा जोड़ तैयार होता है।

परिवर्तनीय तरल प्रावस्थीय जोड़ प्रणाली :

अंतराधातुएं, दुर्गलनीय (Refractory) धातु जैसे उच्च तापीय पदार्थों को जोड़ने के लिए यह विधि काम में लायी जाती है। ऐसे पदार्थों को ठोस अवस्थीय प्रणाली में जोड़ने के लिए काफी उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। इस विधि में कम तापमान पर पिघलने वाली अंतस्थ परत का प्रयोग किया जाता है। परत पिघलने से सतह पर योग्य संपर्क बनता है। तथा दाब के कारण ज्यादातर द्रव निष्कासित किया जाता है और कम तापमान पर एक अच्छा जोड़ बनता है।

परीक्षण :

विसरण जोड़ों की संरचनात्मक एकरूपता, रिसाव दृढ़ता एवं यांत्रिक सामर्थ्य की जांच की जाती है। इन गुणधर्मों को जांचने के लिए जोड़ों पर विविध परीक्षण किये जाते हैं।

अपर्याप्त सतह सज्जा या दाब के कारण जोड़ की सतह पर धातुप्राणीद, ग्रीज, बाह्य कण आदि रह जाते हैं और अंतत: विसरण क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इससे जोड़ों में दरारें पड़ती हैं तथा अपर्याप्त विसरण होता है। फलत: जोड़ कमजोर हो जाता है। जोड़ों की धातुकर्मीय अनुरूपता, दरारें, रंध्रों, बाह्यकणों या अंतराधातुक संयुक्तों के निर्माण को जांचने के लिए अनुप्रस्थ परिच्छेद का प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी और क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा अवलोकन किया जाता है। जोड़ों की सतह के आर-पार विसरण की मात्रा नापने के लिए तथा अंतराधातुक संयुक्तों के निर्माण की जांच करने के लिए ऐसी सतहों का इलेक्ट्रॉन प्रोब सूक्ष्म विश्लेषक द्वारा अध्ययन किया जाता है। जोड़ों की रिसाव दृढ़ता की जांच हीलियम रिसाव परीक्षण द्वारा की जाती है। जोड़ों से बनायी गयी नलिका को वायुरहित करके उस पर हीलियम का स्प्रे किया जाता है। द्रव्यमान स्पेक्ट्रोस्कॉपी द्वारा हीलियम का रिसाव नापा जाता है। जोड़ों का बल निर्धारित करने के लिए जोड़े हुए समुच्चय से तनाव परीक्षण के नमूने का निर्माण किया जाता है। नमूने के निर्माण में यह ध्यान दिया जाता है कि जोड़ नमूने की लंबाई के मध्य में हो।

विसरण जोड़ स्वचालित पद्धति से बनाये जा सकते हैं। उत्पादन के दौरान परिसमाप्त रिसाव दृढ़ता के लिए परीक्षण किया जाता है। विसरण जोड़ों में दोषों की संख्या अति अल्प (0.01-0.001% तक) होने से इन की जांच सामान्य क्ष-किरण या गामा किरण उपकरणों द्वारा नहीं की जा सकती। अत: इनका परीक्षण पराश्रव्य तरंगों से किया जाता है। वेधी द्रव (liquid penetrent), भँवर धारा (eddy current) या चुंबकीय कण ऐसे अन्य अविनाशी (Non-destructive) परीक्षणों से भी जोड़ों की संरचनात्मक एकरूपता परखी जा सकती है।

अनुप्रयोग :

समान अथवा भिन्न पदार्थों को जोड़ने के लिए विसरण जुड़ाई का प्रयोग किया जा सकता है। सिमेंटित कार्बाइड को दूसरे सिमेंटित कार्बाइड से या स्टील के आधार से इस विधि द्वारा जोड़ा जा सकता है। परिक्षेपित कार्बाइड्स का विसरण न होने से सिमेंटित कार्बाइड की अपनी रासायनिक स्थिति बनी रहती है। सरंध्री सेरमेटों की विशाल वस्तु के निर्माण के लिए एक सरंध्री सेरमेट को वैसे ही दूसरे सरंध्री सेरमेट से या ठोस धातु के आधार से जोड़ा जाना इस विधि से संभव है। आधुनिक अभियांत्रिकी में अर्धचालक, फेराइट्स, कांच, सिरेमिक्स, ग्रेफाइट आदि पदार्थों को धातु या मिश्रधातु से जोड़ने की आवश्यकता होती है। इन पदार्थों को विसरण जुड़ाई की विधि से उत्तम तरीके से जोड़ा जा सकता है। जब पदार्थों की रासायनिक रचना, स्फटिक रचना और बनावट (texture) महत्वपूर्ण होती है, जैसे कि नाभिकीय रिएक्टरों में जिरकालॉय-जिरकालॉय की, ऐसे समय

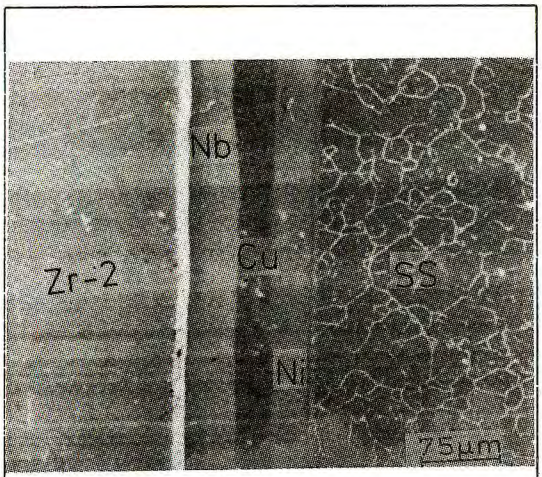

चित्र-1 : ठोस अवस्था में बनाये गये विसरण जोड़ के अनुप्रस्थ परिच्छेद का क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ

जिरकालॉय-जिरकालॉय को जिरकालॉय-जिरकालॉय से या अन्य किसी मिश्रधातु से जोड़ने के लिए विसरण जुड़ाई ही एक मात्र विकल्प है ।

हमारी प्रयोगशाला में जिरकालॉय-जिरकालॉय व स्टेनलेस स्टील के बीच ऐसे विसरण जोड़ बनाये गये हैं। नाभिकीय रिएक्टरों में ईंधन छड़ के केंद्र का तापमान नापने जैसे गर्भीय उपकरणों में तापीय वैद्युत युग्म का प्रयोग किया जाता है और उनका पिंड स्टेनलेस स्टील का बना होता है । ईंधन छड़ का बाहरी आच्छादण जिरकालॉय-जिरकालॉय का बना हुआ होता है। इसलिए जिरकालॉय-जिरकालॉय व स्टेनलेस स्टील के बीच के संक्रमक जोड़ों की आवश्यकता है। इन पदार्थों के विसरण जोड़ (1) निकल, तांबे एवं नायोबियम की अंतस्थ परतों का प्रयोग करके ठोस अवस्था में तथा (2) परिवर्तनीय द्रवण क्रांतिक तरल अवस्था में संपन्न किये गये हैं। अंतस्थ

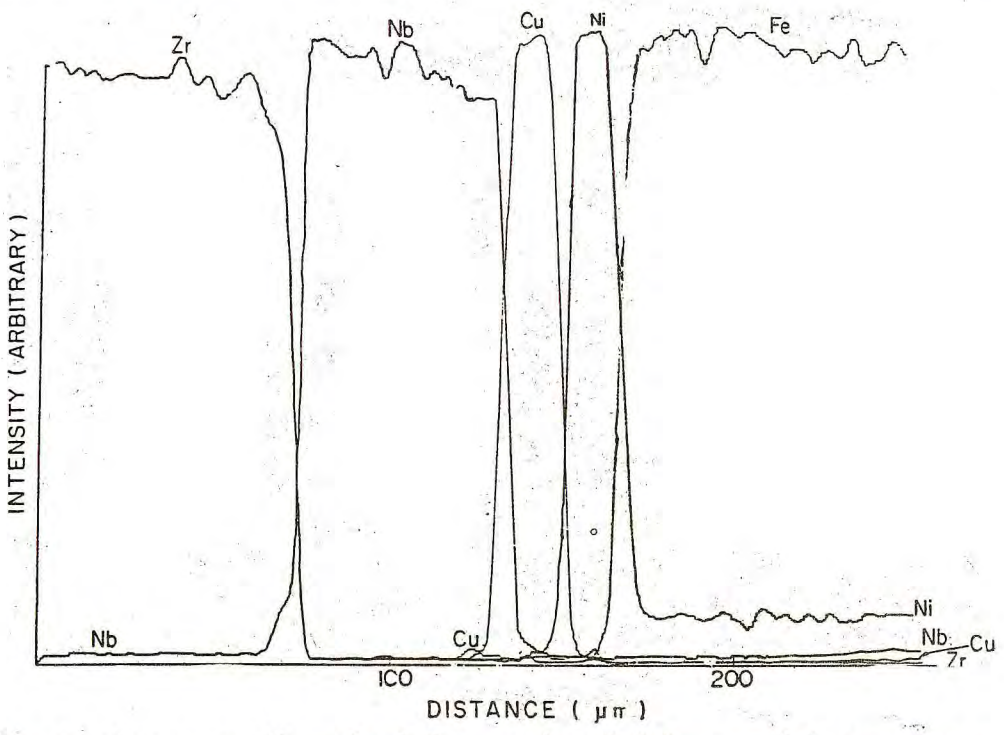

चित्र-2 : ठोस अवस्था में बनाये गये विसरण जोड़ की विभिन्न सतहों के आर-पार का इलेक्ट्रॉन प्रोब सूक्ष्म विश्लेषक द्वारा प्रस्थापित मूल तत्वों का वितरण

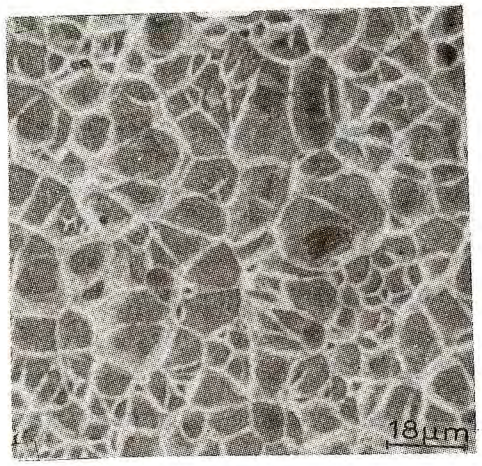

चित्र-3 : क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा विसरण जोड़ की भंग सतह पर देखी गयी गतिकीय संरचना

चित्र-4 : परिवर्तन द्रवण क्रांतिक तरल अवस्था में बनाये गये विसरण जोड़ के अनुप्रस्थ परिच्छेद का प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ

परतों का चयन प्रावस्था आरेखों को देखकर किया है जिससे अंतराधातुकों का निर्माण न हो ।

दोनों विधियों से विसरण जुड़ाई किये हुए जिरकालॉय-जिरकालॉय व स्टेनलेस स्टील के बेलन तथा उत्तरवर्ती मशीनिंग द्वारा नलिकाएं बनायी गयी हैं । क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ठोस अवस्था में बनाये गये विसरण जोड़ के अनुप्रस्थ परिच्छेद का अवलोकन किया गया । इस सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ को चित्र-1 में दर्शाया गया है जो विभिन्न सतहें दिखाता है। विभिन्न सतहों के आर-पार इलेक्ट्रॉन सूचक (प्रोब) सूक्ष्म विश्लेषक द्वारा प्रस्थापित मूल तत्वों का वितरण चित्र-2 में दिया गया है । सूक्ष्मदर्शी चित्र तथा मूलतत्वों के वितरण से विभिन्न सतहों पर अंतराधातुकों के, सूक्ष्म रंध्रों के तथा असततता के अभाव का पता चलता है । क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा भंग सतह पर देखी गयी गतिकीय संरचना (चित्र-3) जोड़े हुए क्षेत्र की लचीली भंग प्रणाली की सूचक है । जोड़े हुए संघटन का बल 450 एम. पी. ए. (जिरकालॉय-जिरकालॉय के चरम तनन बल के 70% के करीब) पाया गया है । परिवर्तनीय द्रवण क्रांतिक तरल अवस्था में संपन्न किया गये जोड़ का प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा गया अनुप्रस्थ परिच्छेद चित्र-4 में दिखाया गया है । सूक्ष्मदर्शी फोटोग्राफ से तथा इलेक्ट्रॉन सूचक (प्रोब) सूक्ष्म विश्लेषण से यह पता लगता है कि अभिक्रिया के क्षेत्र में Zr, Fe, Ni एवं Cr से बने संयुक्तों का निर्माण हुआ है । ऐसे जोड़ का बल 250 एम. पी. ए. पाया गया है । दोनों विधियों से बनाये गये जोड़ों का रिसाव हीलियम रिसाव द्वारा मापने पर नगण्य पाया गया है । यह जोड़ों की रिसाव दृढ़ता एवं संरचनात्मक अखंडता की पुष्टि करता है । इन जोड़ों का बल पर्याप्त पाया गया है और नाभिकीय भट्टी में गर्भीय (क्रोड) उपकरणों के लिए इनका व्यावहारिक रूप से उपयोग किया जायेगा ।

नये आयाम :

पदार्थों को जोड़ने के अलावा विसरण जुड़ाई से मशीनों के भागों की क्षति पूर्ति तथा उनका पुनरुद्धारण किया जा सकता है । विसरण जोड़ों के, एवं मूल पदार्थों

के भौतिक तथा यांत्रिक गुणधर्म समान होते हैं इसलिए क्षतिपूर्ति और पुनरुद्धारण संभव है। पुनरुद्धारण क्रिया में घिसे हुए या सदोष भागों को काटा जाता है और उनकी जगह नये भागों को विसरण जुड़ाई से जोड़ा जाता है। भग्न टुकड़ों को उनके मूल स्थान पर जोड़ कर टूटे-फूटे भागों की मरम्मत की जा सकती है। भग्न टुकड़ों का आकार अनियमित होता है इसलिए टुकड़ों की बाह्य रेखा (contour) पर योग्य धातु की वर्क लगायी जाती है अथवा टुकड़ों की बाह्य रेखा को योग्य धातु से विद्युतलेपित किया जाता है। तत्पश्चात विसरण जोड़ बनाया जाता है।

विसरण जुड़ाई की नयी उपलब्धि है, प्रवणित, प्रबलित एवं कंपोजिट पदार्थों के निर्माण में उसका प्रयोग। कार्बन तंतु वाले कंपोजिट्स में सिरेमिक्स के बीच कार्बन तंतु होते हैं। दो सिरेमिक्स के टुकड़ों को, जिनके बीच कार्बन तंतु सैंडविच किये हों, विसरण जुड़ाई से जोड़कर एक इकाई बनायी जाती है। ऐसी अनेक इकाइयों को विसरण जुड़ाई से जोड़कर पूरा कंपोजिट बनाया जाता है। पदार्थों की सामर्थ्य बढ़ाने के लिए उन्हें अधिक बल वाले पदार्थ से प्रबलित किया जाता है। उदाहरण के तौर पर, पीतल का बल, स्टील से प्रबलित कर, बढ़ाया जाता है। पीतल और स्टील की अनेक परतों को एक दूसरे के ऊपर रखकर विसरण जोड़ बनाया जाता है और प्रबलित पीतल बनता है।

लाभ :

विसरण जुड़ाई से समान तथा भिन्न पदार्थों को जोड़े जाने के अतिरिक्त उसके अन्य बहुत से लाभ हैं। इसके लिए महंगे सोल्डर, इलेक्ट्रोड, फ्लक्स या परिरक्षक वायु की आवश्यकता नहीं होती। विसरण जुड़ाई से जोड़ी हुई वस्तुओं के बारे में कोई वृद्धि नहीं होती, जो गलनीय वेल्डिंग, ब्रेजिंग आदि क्रियाओं में अपरिहार्य है। इसमें संवलन भी नहीं होता। इस विधि में पपड़ी या धातुमल का निर्माण न होने से जोड़े हुए पदार्थ साफ रहते हैं और उत्तरवर्ती मशीनिंग की आवश्यकता नहीं होती। जोड़े हुए क्षेत्र में धातुओं के गुणधर्म अपरिवर्तित रहते हैं। प्रभावित क्षेत्र कम से कम होता है तथा रासायनिक रचना, स्फटिक रचना अधिकतर अबाधित रहती है। यह क्रिया साधारण तापमान और दाब पर की जाती है इसलिए उत्पाद उच्च कोटि के होते हैं और उनका सेवा काल लंबा होता है। विधि की उत्पादकता अच्छी होने के साथ-साथ स्वचालित नियमन भी संभव है। अनेक घटकों को एक ही क्रिया में जोड़ा जा सकता है तथा जटिल आकार की वस्तुओं को भी बनाया जा सकता है। विसरण जुड़ाई द्वारा बनाये गये जोड़ों का बल और मूल पदार्थों के बल लगभग बराबर होते हैं तथा इन जोड़ों की रिसाव दृढ़ता एवं संक्षारण प्रतिरोध शक्ति अच्छी होती है। यह विधि निर्वात में की जाती है इसलिए इसमें कम से कम मात्रा में अपद्रव्य होते हैं। वेल्डिंग अथवा इन जोड़ों की विमीय सहन सीमा (dimensional tolerance) ज्यादा कड़ी होती है। इस क्रिया में निर्वात होने से प्रदूषण नहीं बढ़ता। निर्वात आने में लगने वाला समय इस विधि की एक मात्र सीमा है।

अधातुक पदार्थों से लेकर धातुक पदार्थों तक किसी भी प्रकार के पदार्थ को जोड़ने की एक उदीयमान विधि है, विसरण जुड़ाई। आधुनिक प्रौद्योगिकी में ज्यों-ज्यों विशिष्ट स्टील, अंतराधातुकों एवं कंपोजिट्स का प्रयोग जोड़ने तथा निर्माण में बढ़ेगा त्यों-त्यों विसरण जुड़ाई का महत्व भी अधिक होगा। यह विधि प्रदूषण विहीन होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो रही है।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1996) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

खनिज तेल उत्पादन में आत्मनिर्भरता के प्रयास

डॉ. अतुल कुमार सामंत,
उप अधीक्षण रसायनज्ञ,
अभियांत्रिक और समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान,
तेल एवं प्राकृतिक गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड,
पनवेल, नयी मुंबई 410 221

पिछले कुछ वर्षों से पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ती मांग तथा इसके फलस्वरूप विदेशी मुद्रा भंडार पर पड़ते बोझ को ध्यान में रखकर देश में ही पेट्रोलियम पदार्थों के उत्पादन को बढ़ाना अति आवश्यक हो गया है। इस दिशा में देश की तेल उत्पादक कंपनियों में विभिन्न स्तर पर प्रयोग किये जा रहे हैं। प्रस्तुत लेख में आगार में से अधिकाधिक खनिज तेल प्राप्ति के लिए प्रयुक्त विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है।

विगत कुछ वर्षों से देश के बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण के कारण, पेट्रोलियम पदार्थों की मांग बहुत बढ़ गयी है। 1983-84 में जहां पेट्रोलियम पदार्थों की खपत 35.84 मिलियन टन थी, वह 1996-97 में बढ़कर 81 मिलियन टन तथा 2006-07 में बढ़कर 155 मिलियन टन तक हो जाने की संभावना है। तालिका-1 में पिछले कुछ वर्षों में देश में पेट्रोलियम पदार्थों की मांग/खपत के बारे में जानकारी दी गयी है।

तालिका - 1

देश में पेट्रोलियम पदार्थों की खपत का विवरण

वर्ष	पेट्रोलियम पदार्थों की खपत/माँग* (मिलियन टन प्रति वर्ष)
1983-84	35.84
1993-94	62.34
1996-97	81.00*
2001-02	113.00*
2006-07	155.00*

तालिका-2 में देश में पिछले कुछ वर्षों में खनिज तेल उत्पादन का विवरण दिया गया है। पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ती मांग के कारण देश को प्रतिवर्ष कुल मांग का लगभग 47% आयात करना पड़ता है और इसका सीधा असर देश के विदेशी मुद्रा भंडार पर पड़ रहा है।

तालिका - 2

देश में खनिज तेल उत्पादन का विवरण

वर्ष	खनिज तेल उत्पादन (मिलियन टन)
1961-62	0.04
1982-83	18.24
1984-85	26.26
1989-90	31.99
1990-91	30.35
1992-93	26.95
1993-94	27.02
1994-95	32.30
1995-96	34.56

खनिज तेल उत्पादन की विधि :

कुओं से खनिज तेल का उत्पादन आगार में संचित प्राकृतिक ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर करता है। ऊर्जा दबाव के कारण खनिज तेल भूगर्भीय शैलों में स्थित सूक्ष्म रंध्रों से निकल कर स्वतः सतह पर आता है। इसे निम्नलिखित

सूत्र द्वारा समझा जा सकता है -

$$PW_f > hdg + \Delta P_f$$

यहां पर

PW_f = कूप से तेल बहाव के लिए आगार का दबाव

h = कूप की गहराई

d = खनिज तेल का घनत्व

g = गुरुत्वाकर्षणीय त्वरण

ΔP_f = पाइप में घर्षण के कारण दबाव में कमी

इस सूत्र से स्पष्ट है कि आगार से स्वतः तेल बहाव के लिए आगार दबाव का एक निश्चित मात्रा से अधिक होना अति आवश्यक है (चित्र-1) । इस प्रकार खनिज तेल की स्वतः आगार दबाव के कारण सतह पर प्राप्ति को प्राथमिक प्राप्ति या उत्पादन कहते हैं । इस प्रकार से आगार में उपलब्ध कुल तेल का लगभग 10-20% ही सतह पर आ पाता है । समय के साथ आगार दबाव में ह्रास के कारण तेल उत्पादन की यह मात्रा कम होने लगती है । चित्र-2 में तेल उत्पादन की मात्रा और समय के साथ आगार दबाव में होने वाली कमी के संबंध को दर्शाया गया है । कभी-कभी नये कूपों में भी आगार दबाव में कमी के कारण खनिज तेल स्वतः ऊपर नहीं आ पाता है ।

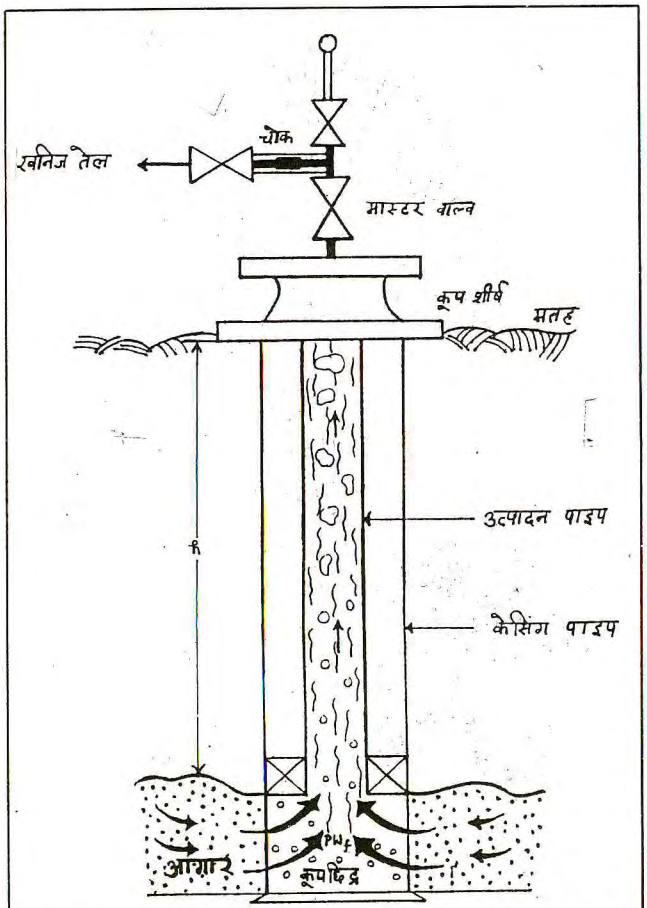

चित्र-1 : स्वतः बहाव तेल कूप द्वारा बिना किसी बाहरी सहायता के तेल उत्पादन का रेखाचित्र

इन परिस्थितियों में कृत्रिम विधियों द्वारा आगार में दबाव बढ़ाकर खनिज तेल प्राप्त किया जाता है । इसके लिए तेल उत्पादक कूपों के चारों तरफ एक निश्चित दूरी पर अन्य कूपों का वेधन किया जाता है । इन कूपों को अंतःक्षेपण कूप कहते हैं (चित्र-3)। इन कूपों के द्वारा जल, गैस या अन्य पदार्थों का अंतःक्षेपण कर आगार में उपस्थित खनिज तेल को चलायमान स्थिति में रखते हैं जिससे यह तेल शैल रंध्रों से विस्थापित हो कर उत्पादक कूपों द्वारा सतह पर आता है । इसके लिए दो विधियों का प्रयोग किया जाता है –

1) द्वितीय प्रतिप्राप्ति विधि :

इस विधि में जल या गैस के अंतःक्षेपण द्वारा आगार पर दबाव नियंत्रण कर खनिज तेल की अधिक प्राप्ति की जाती है । क्योंकि इस विधि द्वारा आगार स्थित जल अथवा तेल के भौतिक या रासायनिक गुणों में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है, अतः तेल प्राप्ति की मात्रा 35-45% तक ही हो पाती है । लगभग 60-70% तेल, शैल समूहों में स्थित सूक्ष्म रंध्रों में ही रह जाता है । इस तेल की प्राप्ति के लिए अब संवर्धित या तृतीय तेल प्राप्ति विधि का उपयोग किया जा रहा है ।

2) संवर्धित या तृतीय तेल प्रतिप्राप्ति विधि :

इस विधि द्वारा तेल की प्रतिप्राप्ति अत्यंत जटिल एवं खर्चीली प्रक्रिया है । अतः इस विधि द्वारा

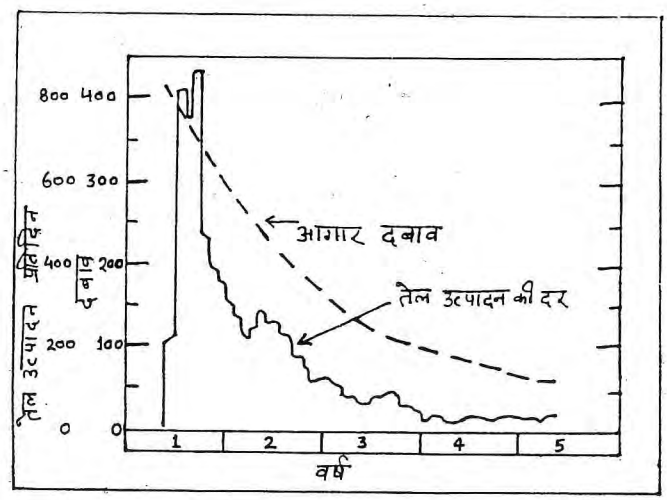

चित्र-2 : तेल उत्पादन की दर और आगार दबाव में संबंध

अधिक तेल का दोहन एक निश्चित समय सारणी में आर्थिक दृष्टि को ध्यान में रखकर किया जाता है। संवर्धित तेल प्रति- प्राप्ति विधि द्वारा तेल दोहन को चार मुख्य वर्ग में विभाजित किया गया है -

i) रासायनिक विधि ii) तापीय विधि, iii) गैसीय विधि iv) सूक्ष्मजीवाणुओं द्वारा दोहन ।

रासायनिक विधि :

रसायनों के अंत:क्षेपण द्वारा संवर्धित तेल प्रतिप्राप्ति में मुख्यत: क्षार, पॉलीमर और परिपृष्ठकर्मी (सरफेक्टेंट) का उपयोग किया जाता है ।

खनिज तेल एवं जल एक - दूसरे में अघुलनशील हैं । शैलों के रंध्रों में विद्यमान तेल का जल द्वारा विस्थापन इनके अंतर-पृष्ठीय तनाव एवं द्रव्यों की गतिशीलता के अनुपात पर निर्भर करता है ।

क्षारीय जल का अंत:क्षेपण सबसे अधिक नेपथानिक, मध्यम श्यानता तथा घनत्व वाले खनिज तेल युक्त ऐसे आगार में किया जाता है, जहां पर 200^0F से कम तापमान तथा कम लवणीय जल होता है ।

इसी प्रकार पॉलीमर युक्त जल का अंत:क्षेपण भी अधिक लवणता तथा तापमान ($> 200^0F$) से युक्त आगार के लिए उपयुक्त नहीं है । उच्च तापमान पर पॉलीमर के विघटन के कारण तेल एवं जल की गतिशीलता प्रभावित होती है ।

क्षार खनिज तेल में उपस्थित अम्लीय यौगिकों से अभिक्रिया कर आगार में ही कुछ ऐसे रसायनों का निर्माण

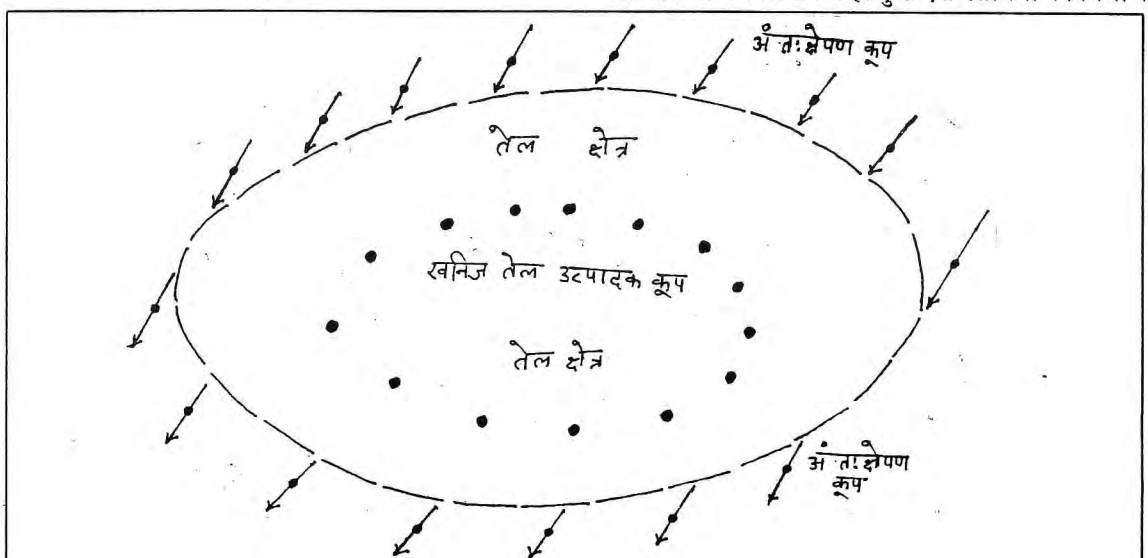

चित्र-3 : अंत:क्षेपण कूपों द्वारा आगार से अधिक तेल दोहन के लिए कूपों की संरचना का रेखाचित्र

करता है जिसमें तेल एवं जल के अंतरपृष्ठीय तनाव को कम करने की क्षमता होती है ।

पॉलीमर की उपस्थिति में जल की गतिशीलता तेल की गतिशीलता से कम हो जाती है और इस प्रकार यह तेल को आगे रखकर सुचारु रुप से विस्थापित करता है ।

अत: क्षारीय जल में पॉलीमर तथा 0.5% परिपृष्ठकर्मी मिलाकर अंत:क्षेपण करने से अधिक खनिज तेल प्राप्ति की संभावना रहती है । विभिन्न रसायनों का चयन, आगार, आगार जल की लवणता और खनिज तेल, की प्रकृति पर निर्भर करता है ।

तापीय विधि :

इस तकनीक का प्रयोग ऐसे आगारों में किया जाता है जहां खनिज तेल की श्यानता अधिक होती है और वह आगार की ऊर्जा के दबाव से स्वत: बहने की स्थिति में नहीं होता है । इस प्रकार के आगार में खनिज तेल को चलायमान बनाने के लिए, वाष्प या गर्म जल का अंत:क्षेपण कर या अंतर्दहन के द्वारा उसकी श्यानता को कम किया जाता है ।

वाष्प अंत:क्षेपण लगातार या चक्र में किया जाता है । यह विधि कम खर्चीली है और मेक्सिको की खाड़ी के तेल क्षेत्र में सफलतापूर्वक उपयोग में लायी जा रही है ।

अंतर्दहन प्रक्रिया में आगार में हवा (ऑक्सीजन) का अंत:क्षेपण कर आगार शैल के मुख पर तेल का दहन किया जाता है । इस प्रकार उत्पन्न ताप से शैल समूहों में उपस्थित जल, वाष्प में परिवर्तित हो जाता है और तेल को तेल उत्पन्न करने वाले कूपों की दिशा में विस्थापित करता है । इस तकनीक का उपयोग अधिक नहीं हुआ है और उन आगारों में किया गया है जिनकी गहराई 4000 से 4500 फीट से अधिक नहीं है ।

गैसीय विधि :

इस विधि में द्रवीकृत प्राकृतिक गैस या कार्बन डाई आक्साइड गैस के अंत:क्षेपण द्वारा खनिज तेल एवं जल के अंतरपृष्ठीय तनाव को न्यूनतम कर तेल को गतिमान बनाये रखना होता है ।

प्राकृतिक गैस, जिसमें C_1 की मात्रा 80% से अधिक है, को उच्च दबाव (3500 पी एस आई से अधिक) द्वारा आगार में अंत:क्षेपित करते हैं । डोम आकार के गुरुत्वाकर्षीय नालीय आगार में इसके अंत:क्षेपण से 90% से अधिक खनिज तेल उत्पादन किया गया है । यह विधि मेक्सिको की खाड़ी, लीबिया तथा अल्जीरिया में सफलतापूर्वक प्रयोग में लायी गयी हैं ।

सूक्ष्मजीवाणुओं द्वारा :

यह एक आधुनिक विधि है तथा विभिन्न तेल उत्पादक देशों में इस विधि द्वारा अधिक तेल उत्पादन के प्रयास किये जा रहे हैं ।

इस विधि में विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीवाणुओं को आगार में अंत:क्षेपित किया जाता है । ये जीवाणु उपापचयी क्रिया द्वारा आगार में कार्बन डाईऑक्साइड गैस, अम्ल तथा बायोपॉलीमर बनाते हैं । कार्बन डाईऑक्साइड, खनिज तेल में घुलकर इसकी श्यानता कम करती है । अम्ल आगार शैलों के रंध्रों में जमा पदार्थों तथा कार्बोनेट से प्रक्रिया कर रंध्रों की पारगम्यता बढ़ाता है । बायोपॉलीमर जल की श्यानता बढ़ाकर तेल - जल अंतर पृष्ठीय तनाव तथा जल की गतिशीलता को कम कर देता है । इन अभिक्रियाओं के फलस्वरूप शैल रंध्रों में संचित खनिज तेल सरलता से बाहर आता है ।

यद्यपि यह विधि अत्यंत सरल एवं कम खर्चीली प्रतीत होती है, मगर सूक्ष्मजीवाणुओं का चयन तथा इनका आगार शैल में अंत:क्षेपण एक मुख्य समस्या है और यह आगार शैल के भौतिक - रासायनिक गुणों, सूक्ष्मजीवाणुओं के शैल सतह पर चिपकने के लिए उपलब्ध उचित स्थान, जीवाणु एवं शैल के बीच उत्पन्न अंतर सक्रिय तनाव, शैल रंध्रता, पारगम्यता तथा जल की लवणता इत्यादि पर निर्भर करता है । इसी प्रकार आगार के वातावरण एवं तापमान सह सकने योग्य तापसह्य (थर्मोफिलिक) सूक्ष्मजीवाणुओं का चुनाव भी इस विधि द्वारा अधिक तेल उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है ।

साफानिया तेल क्षेत्र में, जोकि सऊदी अरब में दूसरा सबसे बड़ा तेल क्षेत्र है, सूक्ष्मजीवाणुओं के

अंत:क्षेपण द्वारा अधिक तेल प्राप्ति के प्रयोग व्यापक पैमाने पर किये जा रहे हैं। इस प्रयोग में साफानिया तेल क्षेत्र के विभिन्न स्थलों में स्थित खनिज तेल कूपों में से ही तीन विभिन्न प्रकार के जीवाणु प्रभेदों (बैक्टीरियल स्ट्रेन) O_{12}, O_9 एवं O_{6a} को पृथक किया गया। इन जीवाणु प्रभेदों की उपापचयी क्रियाओं के अध्ययन से पता चला कि जीवाणु प्रभेद O_{12} की क्रिया से विभिन्न गैसें, पॉलीमर तथा अम्ल उत्पन्न हुए, O_9 की क्रिया से गैसें तथा क्षारीय पदार्थ उत्पन्न हुए तथा O_{6a} की क्रिया द्वारा गैसें, क्षारीय पदार्थ तथा प्रतिपृष्ठकर्मी उत्पन्न हुए। प्रयोगशाला में इन जीवाणु प्रभेदों के अंत:क्षेपण संबंधित विभिन्न प्रयोगों से यह विदित हुआ कि O_{6a} के अंत:क्षेपण से अधिकतम तेल की प्राप्ति तथा शैल समूह को निम्नतम क्षति हुई। इस दिशा में छोटे पैमाने पर प्रयोग जारी हैं। इनके सफल होने पर महंगे रसायनों के उपयोग में कमी कर सूक्ष्मजीवाणुओं द्वारा खनिज तेल के उस भंडार का दोहन संभव होगा जो प्राथमिक एवं द्वितीय प्रतिप्राप्ति विधि द्वारा संभव नहीं है।

भारतीय प्रयास :

देश में खनिज तेल का करीब 70% उत्पादन 'मुंबई हाई' क्षेत्र से होता है। आंठवे पंचवर्षीय कार्यक्रम (1992-97) के अंतर्गत, 'मुंबई हाई' क्षेत्र से तेल के उत्पादन में 1992-93 से 1995-96 तक करीब 44% की वृद्धि हुई है। इस दिशा में विभिन्न स्तर पर प्रयास जारी हैं।

हमारे देश में इस समय अधिक खनिज तेल दोहन के लिए केवल द्वितीय प्रतिप्राप्ति विधि का उपयोग किया जा रहा है। इसके अंतर्गत आगार दाब में आने वाली कमी को कृत्रिम विधि द्वारा रोका जाता है। इसके लिए विभिन्न तेल क्षेत्रों में, जहां पर आगार दाब में कमी के कारण तेल का अधिक उत्पादन संभव नहीं है, जल तथा गैस के आगार में अंत:क्षेपण द्वारा दाब बढ़ाकर तेल उत्पादन किया जा रहा है। पर, इन विधियों द्वारा करीब 15-25% खनिज तेल का ही दोहन संभव हो पा रहा है। पारंपरिक विधियों की तुलना में तृतीय संवर्धित तेल प्रति-प्राप्ति विधियों द्वारा तेल उत्पादन यद्यपि जटिल एवं महंगी प्रक्रिया है, फिर भी तेल एवं प्राकृतिक गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा कम खर्च में इन विधियों द्वारा अधिक तेल दोहन के प्रयास किये जा रहे हैं। इस दिशा में गुजरात के बलोल तथा लनवा तेल क्षेत्रों में अंतर्दहन द्वारा पायलेट स्तर पर अधिक तेल दोहन के प्रयास काफी हद तक सफल रहे। इस पूरे क्षेत्र में व्यावसायिक स्तर पर अंतर्दहन द्वारा तेल प्राप्ति के लिए प्रयास जोरों पर हैं।

इसी प्रकार पॉलीमर तथा सूक्ष्मजीवाणुओं के अंत:क्षेपण द्वारा भी अधिक तेल प्राप्ति के लिए विभिन्न स्तर पर प्रयोग देश में किये गये हैं और इस दिशा में आशानुरूप सफलता मिली है। इन सभी प्रयोगों के व्यावसायिक स्तर पर सफल होने पर तेल प्रतिप्राप्ति 15-25% तक बढ़ाया जाना संभव होगा।

देश में पेट्रोलियम पदार्थों की मांग 5-6% की दर से प्रतिवर्ष बढ़ रही है, जबकि उत्पादन इसके अनुरूप नहीं है। विभिन्न तकनीकी कारणों तथा अधिक लागत के कारण, उपलब्ध तेल क्षेत्रों से एक स्तर से अधिक तेल का दोहन अभी संभव नहीं है। यद्यपि देश में खनिज तेल की प्राप्ति के लिए नये आगार क्षेत्रों की खोज जारी है फिर भी निकट भविष्य में तेल उत्पादन में आत्मनिर्भरता की संभावना सत्य प्रतीत नहीं होती। अत: ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग वांछनीय है।

❐❐❐

भूल-सुधार

'वैज्ञानिक' के जनवरी-मार्च 1997 (29/1) अंक में 'हीलियम में अति-तरलता की खोज' (लेखक : प्रो. गिरीश चंद्र) लेख में चित्र-3 (पृष्ठ - 31) के शीर्षक में ^3He के स्थान पर ^4He छप गया है। पाठक-गण कृपया अपनी-अपनी प्रतियों में आवश्यक सुधार कर लें।

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1996) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

ऑर्थोपेडिक सर्जरी में सिरेमिक का उपयोग

डॉ. मिथलेश कुमार सिन्हा,
वैज्ञानिक,
केंद्रीय कांच एवं सिरेमिक अनुसंधान संस्थान,
कलकत्ता 700 032

सिरेमिक पदार्थ मनुष्य जीवन से अनेक प्रकार से जुड़ा हुआ है जैसे घर में खाने की प्लेट, कप, बाथटब आदि से लेकर टेलीविजन में चुंबक, मोटरकार में स्पार्क प्लग इत्यादि। अब तो मनुष्य शरीर में ऑर्थोपेडिक सर्जरी में अस्थि रोपण और ज्वाइंट प्रॉसथिसिस के रूप में भी इसका प्रयोग हो रहा है। केंद्रीय कांच एवं सिरेमिक अनुसंधान संस्थान में इस दिशा में काफी महत्त्वपूर्ण काम हुआ है और यहां पर विकसित सिरेमिक प्रॉसथिसिस को डॉक्टरों ने कई मरीजों पर इस्तेमाल कर अपने देश में ही इस प्रकार की तकनीक को सफल कर दिखाया है।

सिरेमिक का उपयोग अब घर और फैक्टरी की चार दिवारों तक ही सीमित नहीं है। मनुष्य शरीर में इसके उपयोग ने अब एक प्रकार की क्रांति ला दी है। ऑर्थोपेडिक सर्जरी में सिरेमिक अस्थि रोपण प्रतिस्थापी और ज्वाइंट प्रॉसथिसिस के रूप में व्यवहार हो रहा है। रासायनिक समानता के कारण हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट $[Ca_{10}(PO_4)_6 (OH)_2]$ अस्थि रोपण प्रतिस्थापी का काम करता है परंतु अपने घटिया यांत्रिक गुणों के कारण इसका उपयोग वैसे अंगों के लिए ही सीमित है जिस पर अधिक भार नहीं पड़ता है। भार वहन करने वाले हिस्से (श्रोणि-संधि, घुटना-संधि) के लिए एलुमिना (एल्युमिनियम ऑक्साइड) सिरेमिक, जिसका यांत्रिक गुण बहुत अच्छा है, उपयुक्त माना जाता है। श्रोणि-संधि प्रॉसथिसिस के लिए एलुमिना सिरेमिक काफी प्रचलित है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं विषयों पर चर्चा की गयी है।

सिरेमिक पदार्थ क्या हैं ? कोई भी अकार्बनिक और अधात्विक पदार्थ, जिन्हें प्राकृतिक या कृत्रिम कच्चे माल से उच्च ताप पर पकाकर बनाया जाता है, सिरेमिक कहलाते हैं। सिरेमिक, मनुष्य के दैनिक जीवन से अनेकों प्रकार से जुड़े हुए हैं। घर में खाने की प्लेट, कप, वाश बेसिन, बाथटब, सेनिटरी-वेयर इत्यादि के रूप में सिरेमिक काफी प्रचलित हैं। इसके अलावा टेलीविजन सेट में चुंबक, मोटरकार में स्पार्क प्लग, दूर-संचार में प्रकाशीय रेशे (ऑप्टिकल फाइबर) इत्यादि के रूप में भी सिरेमिक का व्यवहार हो रहा है। अब मनुष्य शरीर में सिरेमिक के उपयोग ने एक प्रकार की क्रांति ला दी है।

जैव सिरेमिक :

ऐसे सिरेमिक, जो शरीर के किसी ऊतक, अंग या क्रिया के इलाज, संवर्धन या प्रतिस्थापन के लिए शरीर में किसी भी अवधि के लिए व्यवहार में लाये जाते हैं, जैव सिरेमिक (बायोसिरेमिक) कहलाते हैं।

शरीर क्रियात्मक (फिजियोलोजिकल) वातावरण में रासायनिक प्रतिक्रिया के आधार पर जैव सिरेमिक को तीन वर्गों में बाँटा गया है : (i) जैव-निष्क्रिय (बायोइनर्ट), (ii) जैव-सक्रिय (बायोएक्टिव) और (iii) जैव-विलय (बायो-रिजर्वेवल)।

(i) जैव-निष्क्रिय :

जैव निष्क्रिय सिरेमिक मनुष्य शरीर में लंबी अवधि तक रहने के बावजूद भी शरीर के क्रियात्मक वातावरण के साथ या तो कोई रासायनिक प्रतिक्रिया नहीं करते हैं और अगर करते भी हैं तो बहुत ही नगण्य। एल्युमिनियम, जिरकोनियम, टाइटेनियम के ऑक्साइड, एल. टी. आई.

कार्बन इत्यादि इसके उदाहरण हैं। इनसे बने सिरेमिक को शरीर में प्रतिरोपण (ट्रांसप्लांटेशन) करने पर ऊतक अनुक्रिया के द्वारा इनके चारों ओर एक बहुत पतली रेशेदार झिल्ली तैयार हो जाती है। जैव निष्क्रिय सिरेमिक शरीर क्रियात्मक तंत्र से यांत्रिक अंत: बंधन द्वारा जुड़े होते हैं। वर्तमान समय में एलुमिना, जिरकोनिया जैव सिरेमिक ज्वाइंट प्रॉसथिसिस के क्षेत्र में उपयोग हो रहा है तथा एल. टी. आई. कार्बन का मुख्य उपयोग हृदयवाहिका युक्ति (कार्डियो वैस्कुलर डिवाइस) के रूप में।

(ii) जैव-सक्रिय :

जैव सक्रिय सिरेमिक शरीर क्रियात्मक वातावरण के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करते हैं तथा इसके फलस्वरूप ऊतक तथा प्रतिरोपित पदार्थ के बीच एक रासायनिक बंधन तैयार होता है। इस तरह के सिरेमिक का उपयोग अस्थि प्रतिस्थापन प्रॉसथिसिस (बोन रिप्लेसमेन्ट प्रॉसथिसिस) तथा विलेपन (कोटिंग) पदार्थ के रूप में होता है। हाइड्रॉक्सी ऐपाटाइट सिरेमिक तथा कुछ खास किस्म के ग्लास और ग्लास-सिरेमिक जैव सक्रिय सिरेमिक के अंतर्गत आते हैं।

(iii) जैव-विलय :

कैल्सियम सल्फेट (प्लास्टर ऑफ पेरिस), ट्राइसोडियम फॉस्फेट तथा अनेक तरह के कैल्सियम फॉस्फेट के लवण जैव विलय सिरेमिक कहलाते हैं। इनका उपयोग मुख्य रूप से कंकाल तंत्र में किसी कारण से उत्पन्न खाली स्थान को अस्थायी रूप से भरने के लिए किया जाता है। एक निश्चित अवधि के अंदर जैव विलय सिरेमिक शरीर क्रियात्मक वातावरण में विलीन हो जाता है तथा इसके स्थान पर नयी हड्डी की वृद्धि होती है।

मानव तन :

मनुष्य का शरीर हड्डी, मांस और रक्त से बना हुआ है। अनेक हड्डियां मिलकर एक कंकाल बनाती हैं जो शरीर को एक निश्चित आकार तथा सहारा प्रदान करता है। यह शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों जैसे मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े इत्यादि को सुरक्षित रखता है। मानव तन में 206 हड्डियां है और प्रत्येक का अपना खास कार्य है। हड्डियों को मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया गया है ; i) अक्षीय और ii) अनुबंधी। खोपड़ी, छाती तथा रीढ़ की हड्डी, जो हमारे नाजुक अंगों की सुरक्षा करती है, अक्षीय अस्थि कहलाती हैं। हाथ और पैर की हड्डियां, जो लटकती रहती हैं, अनुबंधी अस्थि कहलाती हैं।

अस्थि संरचना :

शरीर के अन्य ऊतकों की तरह हड्डियां भी एक जीवित संरचना है। यह एक संयोजी ऊतक है जो जीवित कोशिकाओं, कोलैजन फिबरिल्स और खनिज पदार्थ से मिलकर बना हुआ है। हड्डी के कोशिकीय स्तर पर, अस्थिशोषक (ऑस्टियोक्लास्ट), अस्थिकारक (ऑस्टियो-ब्लास्ट) और अस्थ्यणु (ऑस्टियोसाइट) तीन मुख्य घटक होते हैं। बोन मैट्रिक्स में आयतन के हिसाब से 30% कोलैजन फिबरिल्स और 70% खनिज पदार्थ रहता है। कोलैजन एक प्रोटीन पॉलीमर है और इसके कारण ही हड्डी लचीली होती है। खनिज पदार्थ के रूप में हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट, जो कैल्सियम और फॉस्फेट का यौगिक है, मौजूद रहता है। लंबी अस्थि के अंदर एक गुहिका होती है जिसकी भित्ती में संवहन (वस्कुलर) झिल्ली, जिसे अंतरस्थिछद (एन्डोसियम) कहते हैं, का अस्तर रहता है। गुहिका अस्थिमज्जा से भरी रहती है। यह एक तरह की रासायनिक प्रयोगशाला है जहां लाल रक्त कोशिकाएं बनती हैं।

अस्थि रोपण पदार्थ एवं अस्थिरोपण प्रतिस्थापी (बोन ग्राफ्ट सब्स्टीच्यूट) की आवश्यकता :

त्वचा और रक्त को छोड़कर अन्य ऊतकों की तुलना में आजकल अस्थि का प्रतिरोपण सबसे ज्यादा किया जा रहा है। ऐसा आकलन है कि सिर्फ अमेरिका में प्रतिवर्ष 2 लाख ऐसे ऑपरेशन किये जाते हैं जिनमें अस्थिरोपण की आवश्यकता होती है। अस्थिरोपण पदार्थों का उपयोग टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने, कंकाल तंत्र की गड़बड़ी को ठीक करने तथा अस्थि अर्बुद (बोन ट्यूमर) को हटाने से उत्पन्न रिक्त स्थान भरने के लिए किया जाता है। अस्थिरोपण के रूप में व्यवहार के लिए अनेकों पदार्थ उपलब्ध हैं। इनमें से हर एक के अपने फायदे व नुकसान

हैं। एक आदर्श अस्थिरोपण या अस्थिरोपण प्रतिस्थापी में निम्नलिखित गुण होने चाहिए :-

(अ) इसे जैवसुसंगत, अकैंसरजनी तथा अप्रतिरक्षाजनी होना चाहिए। इसे किसी तरह की प्रतिकूल जैविक अनुक्रिया का प्रारंभ नहीं करना चाहिए।

(ब) इसे अस्थिजनी एवं अस्थिवाहिनी (ऑस्टिया कन्डक्टिव) होना चाहिए।

(स) यह असीमित मात्रा में उपलब्ध हो तथा इसकी कीमत अपेक्षाकृत कम हो।

(द) यह व्यवहार तथा रोगाणुरहित करने में आसान हो।

(ड) यह आदाता में किसी तरह के संक्रमण का संचार नहीं कर सके।

अस्थिरोपण पदार्थ को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा गया है ; (1) स्वगत (ऑटोजेनस), और (2) अन्यत्रजात (एलोजेनस)।

स्वगत अस्थिरोपण :

स्वगत अस्थिरोपण में मरीज के शरीर के अन्य हिस्से से अस्थि लेकर प्रभावित जगह में उपयोग की जाती है। यह रोपण पदार्थ इलियम, टिबिया, फिबुला, पसली आदि से प्राप्त किया जा सकता है। अनेक कारणों से स्वगत अस्थि रोपण पदार्थ को वरीयता दी जाती है। पहला कि यह जैवसुसंगत और अप्रतिरक्षाजनी है क्योंकि यह उसी आदमी के शरीर से ली जाती है। दूसरा, यह अस्थिरोपण आदाता में किसी संक्रामक रोग का संचार नहीं करेगा। तीसरा, इसमें अस्थिजनी गुण प्रदर्शित करने की क्षमता होती है। यद्यपि स्वगत रोपण पदार्थ में अनेक सुविधाएं हैं परंतु इसके साथ-साथ इसमें अनेक स्पष्ट असुविधाएं भी हैं। पहला कि स्वगत अस्थि इलियम या पसली से सीमित मात्रा में ही ली जा सकती है। अधिक मात्रा में हड्डी की आवश्यकता होने पर यह शरीर द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकती है। यह समस्या बाल रोगियों के साथ अधिकतर होती है। इसके अलावा स्वगत अस्थि रोपण में रोगी को दो बार ऑपरेशन की यातना भुगतनी पड़ती है, रोगी को स्वस्थ्य होने में ज्यादा समय लगता है तथा पैसा भी अधिक खर्च होता है। इस तरह से हम देखते हैं कि स्वगत अस्थि रोपण में जितने फायदे हैं, उससे ज्यादा नुकसान हैं।

अन्यत्रजनिक अस्थि रोपण :

अन्यत्रजनिक अस्थि उस अस्थि को कहते हैं जो उसी जाति (स्पीशीज) के दाता से ली जाती है। जिस प्रकार रक्त बैंक में रक्त उपलब्ध रहता है, उसी तरह अस्थि बैंक में अस्थि उपलब्ध रहती है। स्वगत अस्थि की तुलना में इसकी सुविधा यह है कि यह असीमित मात्रा में उपलब्ध है। इसमें मृतक जानवरों की हड्डी इस्तेमाल की जाती है। इस तरह के अस्थि रोपण में यह असुविधा है कि एड्स या अन्य संक्रामक रोग होने का डर रहता है और कभी-कभी मनुष्य शरीर जानवर की हड्डी को स्वीकार नहीं कर पाता है। एक और दिक्कत का भी सामना करना पड़ता है वह यह कि हर जगह खासकर छोटे शहरों में अस्थि बैंक की सुविधा भी नहीं होती है।

कृत्रिम अस्थि रोपण प्रतिस्थापी :

वर्तमान में उपलब्ध अस्थिरोपण पदार्थों के साथ जो समस्या है उसके समाधान के लिए एक कृत्रिम अस्थिरोपण प्रतिस्थापी के विकास की आवश्यकता महसूस हुई। विगत कुछ वर्षों के अनुसंधान के द्वारा यह पाया गया है कि कैल्सियम फॉस्फेट सिरेमिक वर्ग के पदार्थ अन्य पदार्थों की तुलना में अस्थिरोपण प्रतिस्थापी के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं। इसका कारण है कि कैल्सियम फॉस्फेट सिरेमिक वर्ग के पदार्थ अन्य पदार्थों की तुलना में अस्थिरोपण प्रतिस्थापी के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं। इसका कारण है कि कैल्सियम और फॉस्फेट ऑयनों को सामान्य शरीर क्रियात्मक और कोशिकीय कार्यों के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त समझा जाता है।

हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट सिरेमिक अस्थिरोपण प्रतिस्थापी के रूप में :

हाइड्रोक्सीऐपाटाइट सिरेमिक अस्थि प्रतिस्थापन के रूप में व्यापक ढंग से व्यवहार हो रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसकी रासायनिक रचना हड्डी में उपस्थित खनिज से काफी मिलती-जुलती है। इसके

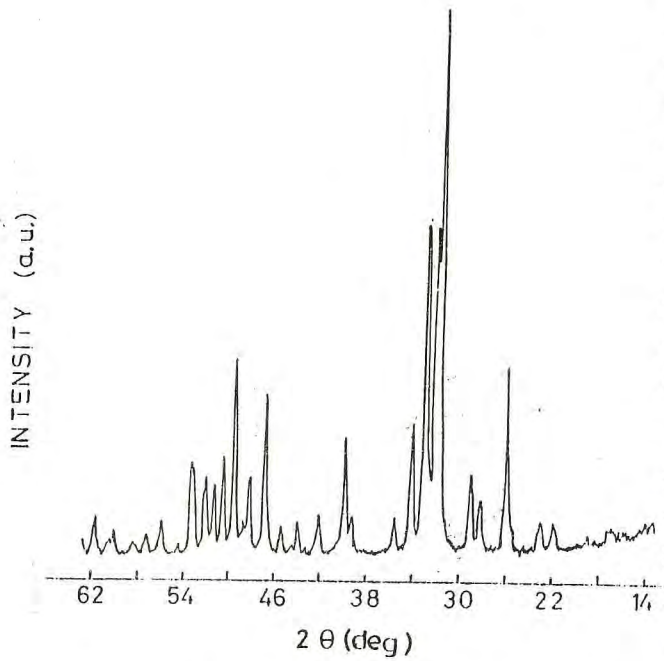

चित्र-1 : शुद्ध हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट का एक्स-रे विवर्तन

अलावा यह अविषालु और जैव सुसंगत है तथा हड्डी के साथ एक मजबूत रासायनिक बंधन तैयार करती है जिससे कि इसको हड्डी से आसानी से अलग नहीं किया जा सकता है। ऑपरेशन थियेटर में इसके साथ काम करना आसान है एवं इसे आसानी से रोगाणुरहित किया जा सकता है । हाइडॉक्सीऐपाटाइट सिरेमिक का सघन (बल्क) ठोस, छिद्रयुक्त (पोरस) ठोस, चूर्ण कणिका (ग्रेनूल्स) के रूप में भिन्न-भिन्न कार्यों में व्यवहार होता है ।

बनाने की विधि :

हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट सिरेमिक बनाने में पहला कदम है अत्यधिक शुद्ध (99.5% से अधिक) हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट पाउडर तैयार करना । पाउडर तैयार करने की अनेक विधियां हैं, जैसे ठोस अवस्था प्रतिक्रिया अवक्षेपण, जलोष्म संश्लेषण (हाइड्रोथर्मल सिन्थेसिस) इत्यादि । हर विधि का अपना गुण और दोष है । पाउडर की गुणता उसके बनाने की विधि पर निर्भर करती है और पाउडर से बने सिरेमिक का गुण पाउडर की गुणता पर निर्भर करता है । पाउडर बनाने के लिए अवक्षेपण विधि अत्यंत प्रचलित है क्योंकि इस विधि द्वारा बनाये गये पाउडर का कण-परिमाण महीन तथा पृष्ठीय क्षेत्रफल अधिक होता है। इस विधि में कैल्सियम के लिए कैल्सियम क्लोराइड, कैल्सियम नाइट्रेट, कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड आदि तथा फॉस्फेट के लिए फॉस्फोरिक अम्ल, अमोनियम हाइड्रोजन फॉस्फेट आदि लिया जाता है। अभिकर्मक दर्जे के कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड और फॉस्फोरिक अम्ल की प्रतिक्रिया से बने शुद्ध पाउडर का एक्स-रे विवर्तन पैटर्न चित्र-1 में दिखाया गया है ।

पाउडर से सिरेमिक अस्थिरोपण बनाने के कई तरीके हैं। कौन सा तरीका अपनाया जायेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस तरह का अस्थिरोपण बनाना है - सघन ठोस, छिद्रयुक्त ठोस या ग्रेनूल्स । सघन ठोस सिरेमिक दाब के द्वारा संहत (कॉम्पेक्ट) कर 1200 से 1300 डिग्री सेल्सियस तापमान पर पकाया जाता है । 1250 डिग्री सेल्सियस तापमान पर पकाकर बनाये गये एक सघन ठोस सिरेमिक की सूक्ष्म-संरचना चित्र-2 में दिखायी गयी है। अस्थिल ऊतक (बोनी टिशू) में सिरेमिक के ऑसिओइन्टीग्रेशन को बढ़ावा देने के लिए जान बूझकर सिरेमिक को छिद्रयुक्त बनाया जाता है। छिद्रयुक्त सिरेमिक बनाने के लिए सिरेमिक पाउडर के साथ निश्चित

चित्र-2 : 1250 डिग्री सेल्सियस तापमान पर पके एक सघन हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट सिरेमिक की सूक्ष्म संरचना ।

चित्र-3 : ऑपरेशन के तुरंत बाद लिया गया एक्स-रे

आकार के नेप्थलीन पाउडर को समसर्वत्र ढंग से मिलाकर दबाव के द्वारा एक निश्चित प्रकार का आकार दिया जाता है। नेप्थलीन के उर्ध्वपातन के बाद नेप्थलीन पाउडर के आकार का छिद्र उसमें रह जाता है। इसे उपरोक्त तापमान पर पकाने से छिद्रयुक्त सिरेमिक तैयार होता है। ऑर्थोपेडिक सर्जरी में सघन की तुलना में छिद्रयुक्त सिरेमिक ज्यादा व्यवहार होता है। ऐसा पाया गया है कि 150 से 500 माइक्रोन के आकार का छिद्र अस्थिल अंत:वर्ध (बोनी इनग्रोथ) के लिए लाभदायक होता है। सिरेमिक ग्रेनूल्स भी इसी तरह के तरीके से तैयार होता है।

कें. कां. सि. अ. सं. (CGCRI) द्वारा विकसित अस्थिरोपण प्रतिस्थापी :

विगत दो-तीन दशकों से विदेशों में हाइड्रॉक्सी-ऐपाटाइट सिरेमिक लंबी हड्डियों के टूटने से उत्पन्न गड़बड़ी की मरम्मत, बोन ट्यूमर की हालत में प्रभावित हड्डी को खुरचकर हटाने से उत्पन्न गड्ढे को भरने तथा मेरुदंड की चिकित्सा में बोन ग्राफ्ट सब्स्टीच्यूट के रूप

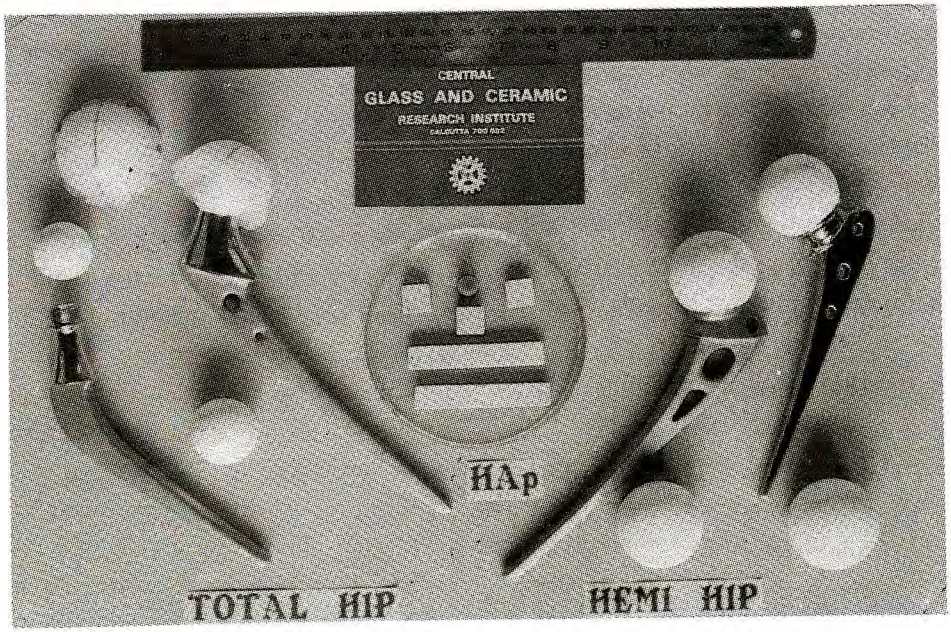

चित्र-4 : एलुमिना सिरेमिक से बनी श्रोणि-संधि, प्रॉसथिसिस।

में व्यवहार हो रहा है। परंतु हमारे देश में अभी भी इसका व्यवहार देखने को नहीं मिलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह हमारे देश में उपलब्ध नहीं है तथा आयातित माल की कीमत बहुत ज्यादा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कलकत्ता स्थित केंद्रीय कांच और सिरेमिक अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने देश में पहली बार प्रयोगशाला स्तर पर हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट सिरेमिक का निर्माण किया तथा वर्ष 1993 में इसे सर्वप्रथम एक दो वर्षीय मासूम बच्ची के ऊपर सफलता-पूर्वक परीक्षण किया गया। बच्ची बोन ट्यूमर के रोग से ग्रसित थी। क्षतिग्रस्त बोन को खुरचकर हटाने के बाद उत्पन्न खाली जगह को संस्थान द्वारा निर्मित छिद्रयुक्त हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट ग्रेनूल्स से भर दिया गया। ऑपरेशन के बाद लिया गया एक्स-रे, चित्र-3 में दिखाया गया है। बच्ची ऑपरेशन के तीन महीने बाद पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी। इसके बाद अन्य रोगियों पर भी इसका परीक्षण किया गया।

अन्य सिरेमिकों की तरह, हाइड्रॉक्सीऐपाटाइट सिरेमिक की संपीडन सामर्थ्य (कॉमप्रेसिव स्ट्रेन्थ) अधिक तथा तनन सामर्थ्य (टेनसाइल स्ट्रेन्थ) और विभंग चर्मलता (फ्रेक्चर टफ्नेस) कम होती है। अस्थि की तुलना में इसके यांत्रिक गुणों - विशेषकर विभंग चर्मलता को घटिया माना जाता है। इस कारण से इसका उपयोग शरीर के उस हिस्से तक ही सीमित है जिस पर कम भार पड़ता है। छिद्रता (पोरोसिटी) की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ हाइड्रोक्सीऐपाटाइट सिरेमिक का यांत्रिक गुण घटता जाता है। छिद्रयुक्त की तुलना में सघन सिरेमिक का यांत्रिक गुण अच्छा होता है परंतु इसके बावजूद भी सघन सिरेमिक कम प्रचलित है क्योंकि छिद्र के अभाव में अंत: वर्ध (बोनी इनग्रोथ) नहीं हो पाता है।

अस्थि-संधि प्रतिस्थापन (बोन-ज्वाइंट रिप्लेसमेंट) :

मनुष्य शरीर में अनेकों तरह की अस्थि-संधि हैं जैसे कंधा, घुटना, कलाई, कोहनी, श्रोणि इत्यादि। बीमारी या दुर्घटना की हालत में इन संधियों के प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है। हर तरह की संधि के लिए एक खास कृत्रिम प्रॉसथिसिस होता है। उदाहरण के लिए, जो प्रॉसथिसिस कंधे की संधि के लिए काम आता है वह घुटने की संधि के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। जितने भी तरह के जोड़ (ज्वाइंट) प्रॉसथिसिस है, उनमें से सबसे ज्यादा मांग श्रोणि-संधि (हिप-ज्वाइंट) प्रॉसथिसिस की है। ऑस्टियो आरथराइटिस (गठिया) की बीमारी या दुर्घटना में टूटने के कारण श्रोणि-संधि बदलने की आवश्यकता होती है। श्रोणि-संधि प्रॉसथिसिस के तीन घटक होते हैं - उरूडंडी (फेमोरल स्टेम), उरूशीर्ष (फेमोरल हेड) और श्रोणि उलूखल (एसीटाबूलम कप)। ये तीनों एक साथ मिलकर पूर्ण श्रोणि-संधि प्रॉसथिसिस कहलाते हैं (चित्र-4)। उरूशीर्ष श्रोणि उलूखल कप में चलायमान रहता है।

सिरेमिक श्रोणि-संधि प्रॉसथिसिस :

वर्तमान समय में उरूशीर्ष और उरूडंडी धातु के बने होते हैं और श्रोणि उलूखल कप अति उच्च परमाणु भार के पॉलिएथिलीन का बना होता है। उरूशीर्ष और उरूडंडी बनाने में सामान्यत: 316 एल स्टेनलेस स्टील, कोबाल्ट-क्रोमियम मिश्रधातु और टाइटेनियम मिश्रधातु इत्यादि काम में लाये जाते हैं। इनकी तनन सामर्थ्य और विभंग चर्मलता काफी अधिक होती है और इसलिए इसे भार-वहन करने वाले शारीरिक हिस्से के लिए उपयुक्त माना जाता है। संक्षारण (कोरोजन) और विघर्षण (वेयर) प्रतिरोध कम होने के कारण धातु से बने उरूशीर्ष ऊतकों में ऑयन या कणिकीय पदार्थ निष्कासित करते हैं जिसके फलस्वरूप आस-पास के ऊतकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा धातु के उरूशीर्ष और पॉलिएथिलीन श्रोणि उलूखल कप के बीच जो घर्षण होता है, उससे काफी मात्रा में मलवा जमा होता है जो जोड़ों में दर्द उत्पन्न करता है। इन खामियों के कारण धातु से बने प्रॉसथिसिस का जीवन काल 10 - 12 वर्ष तक का होता है जिसके फलस्वरूप कुछ वर्षों के अंतराल में इसे रोगी के शरीर से निकालकर दूसरा नया प्रॉसथिसिस लगाना पड़ता है। इस प्रक्रिया में रोगी को शारीरिक कष्ट और मानसिक यातना भुगतनी पड़ती है। इन समस्याओं के निवारण के लिए वैज्ञानिकों की दृष्टि सिरेमिक पदार्थों पर पड़ी है।

श्रोणि संधि प्रॉसथिसिस के लिए जैव-निष्क्रिय सिरेमिक के अंतर्गत आने वाले एलुमिना, जिरकोनिया एवं टाइटेनिया सिरेमिक उपयुक्त माने जाते हैं। परंतु इनमें से सबसे ज्यादा एल्युमिनियम ऑक्साइड को उपयुक्त

समझा जाता है। इसके पीछे कारण यह है कि एलुमिना जैव-सुसंगत और अविषालु है। इसकी संपीडन सामर्थ्य और वेधन क्षमता (हार्डनेस) अधिक है। धातु की तुलना में इसका घर्षण गुणांक कम तथा संक्षारण प्रतिरोध अधिक है। धातु-पॉलिएथिलीन सिस्टम की तुलना में एलुमिना पॉलिएथिलीन सिस्टम की विघर्षण दर 10 गुणा कम है और इस कारण कम मात्रा में मलवा जमा होता है। इन सब लाभकारी गुणों के कारण एलुमिना से बने उरूशीर्ष को श्रेष्ठ माना जाता है। धातु की तुलना में एलुमिना की तनन सामर्थ्य और विभंग चर्मलता कम है। इसलिए इसको उरूडंडी बनाने के लिए अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इस तरह से हम देखते हैं कि श्रोणि संधि के प्रतिस्थापन की जटिलता को ध्यान में रखते हुए पूर्ण श्रोणि संधि प्रॉसथिसिस में धातु, सिरेमिक और पॉलीमर, इन तीनों पदार्थों का व्यवहार होता है। उन्नत देशों में अभी धातु की उरूडंडी, एलुमिना का उरूशीर्ष और एलुमिना या पॉलिएथिलीन का श्रोणि उलूखल कप बनाया जाता है परंतु हमारे देश में ऐसा नहीं हो रहा है।

कें. कां. सि. अ. सं. द्वारा विकसित सिरेमिक प्रॉसथिसिस :

केंद्रीय कांच और सिरेमिक अनुसंधान संस्थान, कलकत्ता ने देश में पहली बार एलुमिना सिरेमिक से बने श्रोणि संधि प्रॉसथिसिस का विकास किया है। विकास की मुख्य बात यह है कि इसमें धातु से बने उरूशीर्ष को एलुमिना द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है तथा उरूशीर्ष को चूड़ी (थ्रेड) के द्वारा उरूडंडी से जोड़ा गया है (चित्र-4)। इसे बनाने के लिए संस्थान द्वारा ही निर्मित अत्यधिक शुद्ध (99.5% से अधिक) एलुमिना चूर्ण को उच्च समस्थितिक दाब के द्वारा संहत कर एक बेलनाकार ब्लॉक में परिवर्तित किया गया। ब्लॉक को लेथ मशीन पर कांट-छांट कर उरूशीर्ष का आकार देने के बाद 1600 डिग्री सेल्सियस तापमान पर पकाया गया। पकाने के बाद डायमंड चूर्ण की सहायता से इसको काफी पॉलिश किया गया। उसके बाद इसे "ऑसटिन मूर" नामक स्टेनलेस स्टील की उरूडंडी के साथ जोड़कर कृत्रिम सिरेमिक

चित्र-5 : ऑपरेशन के तुरंत बाद लिया गया एक्स-रे

श्रोणि-संधि तैयार की गयी। संस्थान द्वारा विकसित इस सिरेमिक प्रॉसथिसिस को कलकत्ता चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के डॉक्टरों ने 1990 में सर्वप्रथम एक 62 वर्षीय महिला पर प्रयोग किया। ऑपरेशन के बाद लिया गया एक्स-रे, चित्र-5 में दिखाया गया है। कलकत्ता में अनेक मरीजों के ऊपर सफलतापूर्वक परीक्षण के बाद दिल्ली स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डॉक्टरों द्वारा अनेक रोगियों के इलाज में इस प्रॉसथिसिस का उपयोग किया गया है। कम आयु के रोगी के लिए यह सिरेमिक प्रॉसथिसिस एक प्रकार से वरदान साबित होगा क्योंकि धात्विक प्रॉसथिसिस की तुलना में इसका जीवन काल अधिक होगा और एक लंबे समय (30-40 वर्ष) तक इसे बदलने की जरूरत नहीं होगी। इसीलिए सिरेमिक के बने प्रॉसथिसिस को "लगाइए और भूल जाइए" की संज्ञा भी दी जाती है।

एक आकलन के अनुसार हमारे देश में लगभग 4 लाख मरीजों को श्रोणि संधि प्रॉसथिसिस की आवश्यकता होती है और प्रति वर्ष इसकी मांग बढ़ती जा रही है। जहां तक कीमत का प्रश्न है तो यह आयातित प्रॉसथिसिस की तुलना में चार गुणा कम है। अतः इस तकनीक को समुचित प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1996) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

कृत्रिम दृष्टि : विज्ञान का आधुनिकतम उपहार

डॉ. घनश्याम दास जिंदल,

इलेक्ट्रॉनिकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई 400 085

दृष्टिहीनता अथवा नेत्रहीनता अपने आप में एक अभिशाप है। दृष्टिहीन प्राणी उस सुख से वंचित रह जाता है जो अन्य सभी को प्राप्त है। आयुर्विज्ञान आदिकाल से ही इस अभिशाप के प्रति जागरुक रहा है और यथा संभव इस समस्या का हल खोजने में प्रयत्नशील रहा है। इन्हीं अथक प्रयासों का परिणाम है कि कुछ प्रतिशत नेत्रहीन प्राणी नेत्र आरोपण से लाभान्वित होते हैं और प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य का लाभ उठाते हैं। परंतु दृष्टिहीनों का एक बहुत बड़ा समुदाय इस शल्य क्रिया से लाभ नहीं उठा पाता है। क्योंकि इनके नेत्र एक उपकरण के रूप में तो सही कार्य करते हैं परंतु नेत्र द्वारा निर्मित प्रतिबिंब मस्तिष्क तक पहुंच ही नहीं पाता। इस प्रकार की दृष्टिहीनता के लिए आयुर्विज्ञान पिछले 40 वर्षों से संघर्षरत है। पिछले कुछ वर्षों से आशा की किरण दृष्टिगोचर हुई है और कृत्रिम दृष्टि की कल्पना साकार हुई है। प्रस्तुत लेख में कृत्रिम दृष्टि के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

दृष्टिहीनता के कारण :

दृष्टिहीनता के कारण जानने से पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि हम बाहर का दृश्य किस प्रकार देखते हैं। जैसा कि चित्र-1 में दिखलाया गया है, बाहर के दृश्य का प्रतिबिंब लैंस आदि विभिन्न अवयवों की सहायता से नेत्र के दृष्टि पटल पर बनता है। दृष्टि पटल में उपस्थित प्रकाश ग्राही (फोटो रिसेप्टर्स) इस बिंब को द्विदिशीय विद्युतीय प्रतिरूप में परिवर्तित करते हैं। इसके अतिरिक्त दृष्टिपटल पर उपस्थित विशेष कोशिकाएं, इस द्विदिशीय प्रतिरूप की स्थानिक (स्पैशियल), कालगत (टेम्पोरल) एवं वार्णिक (क्रोमेटिक) संसाधन करके न्यूरल आवेगों में परिवर्तित कर देती हैं जैसा कि चित्र-2 में दिखलाया गया है। ये संसाधित संकेत मस्तिष्क के प्राथमिक चाक्षुष (प्रायमरी विजुअल) कॉरटैक्स में पहुंचते हैं। यह प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स लगभग 2-3 मिमी. मोटा होता है और सिर के पिछले भाग में कानों के स्तर पर मौजूद रहता है। जब प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स की

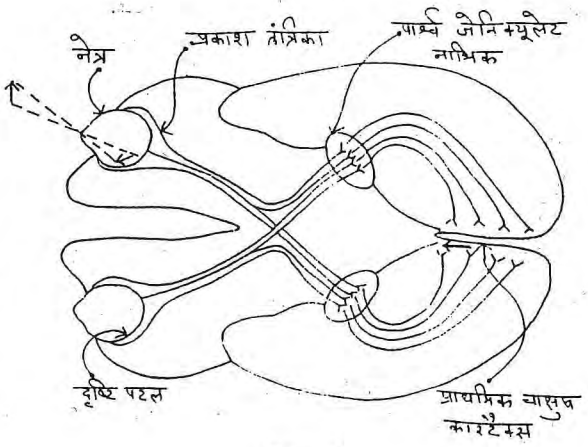

चित्र-1

कोशिकाएं विद्युत संकेतों द्वारा उत्तेजित होती हैं तो रोशनी के बिंदु उत्पन्न होते हैं जिन्हें फॉस्फीन कहा जाता है। फॉस्फीन का यह क्रम मस्तिष्क के प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स से उच्च कारटिकल केंद्रों की ओर प्रस्थान करता है जहां बाहर का दृश्य हूबहू प्रतिबिंबित होता है। इस

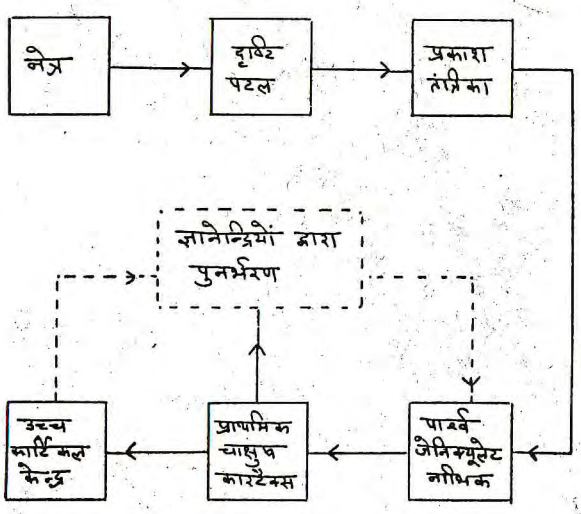

चित्र-2

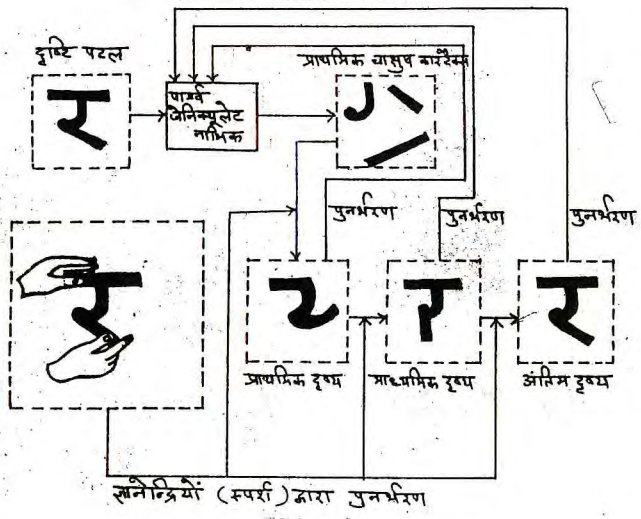

चित्र-3

प्रतिबिंब का हमारी अन्य ज्ञानेंद्रियों से परिपूर्ण तालमेल रहता है। जिसके आधार पर मस्तिष्क शरीर के अन्य भागों को कार्यान्वित करता है।

यह उल्लेखनीय है कि दृष्टि की इस कार्यविधि में अनुकूलन (एडाप्टेशन) का समावेश है। सर्वप्रथम तो यह आवश्यक नहीं है कि जैसा बाहरी दृश्य हो, वैसा ही प्रतिरुप प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स पर बने। उदाहरण के तौर पर चित्र-3 में यह दिखलाया गया है कि यदि बाहरी दृश्य 'र' है तो प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स में कुछ अन्य ही प्रतिरुप बनता है। परंतु उच्च कारटिकल केंद्रों में 'र'से मिलता-जुलता प्रतिबिंब बनता है। यहां मस्तिष्क की बुद्धिमत्ता कार्यशील होती है। वह इसमें अन्य ज्ञानेंद्रियों के (जैसे कि स्पर्श अनुभव के) आधार पर संशुद्धि करती है। इसे अनुकूली क्रिया विधि कहा जाता है। इस कार्य के लिए दृष्टि मार्ग में जहां-जहां संसाधित्र उपलब्ध हैं वहां-वहां उच्च कारटिकल केंद्रों, प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स आदि से सूचना प्राप्त होती है और विद्युतीय प्रतिरुप का संसाधन होता है। इसके उपरांत हमें हूबहू प्रतिबिंब प्राप्त होता है।

चित्र-2 में दिखाये गये दृष्टि मार्ग में कहीं भी दोष होने से दृष्टिहीनता उत्पन्न होती है। लैंस, कॉरनिया आदि के दोष से उत्पन्न दृष्टिहीनता नेत्र आरोपण से निवारण हो जाती है। परंतु दृष्टि पटल, प्रकाश तंत्रिका आदि के दोष से उत्पन्न दृष्टिहीनता निकट भूतकाल तक लाइलाज थी। पिछले कुछ वर्षों से दृष्टि पटल, प्रकाश तंत्रिका जनित दृष्टिहीनता के लिए कृत्रिम दृष्टि नामक युक्ति का विकास हो रहा है। यह कार्य अभी तक शोधस्तर तक ही सीमित है और आगामी दशक तक नियमित उपचार के रुप में इसके प्राप्त होने की संभावना है।

कृत्रिम दृष्टि का आधार :

लगभग 30 वर्ष पहले श्री जाइल्स ब्रिन्डले और उनके सहयोगियों ने कैंब्रिज विश्वविद्यालय में एवं श्री विलियम डोबेले और उनके सहयोगियों ने उटाह विश्वविद्यालय में प्राथमिक चाक्षिष कॉरटैक्स पर कुछ इलेक्ट्रोड व्यूह आरोपित किये और उनका संबंध छोटी-छोटी कुंडलियों से किया जो शिरोवल्क (Scalp) के नीचे आरोपित किये गये थे। इन कुंडलियों में दूरमिति (टेलीमीट्री) द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित करने पर यह पाया गया कि :

1) व्यूह के प्रत्येक इलेक्ट्रोड द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित करने पर फॉस्फीन प्रतिक्रिया प्राप्त होती है जो कि एक रोशनी बिंदु की अनुभूति देती है।

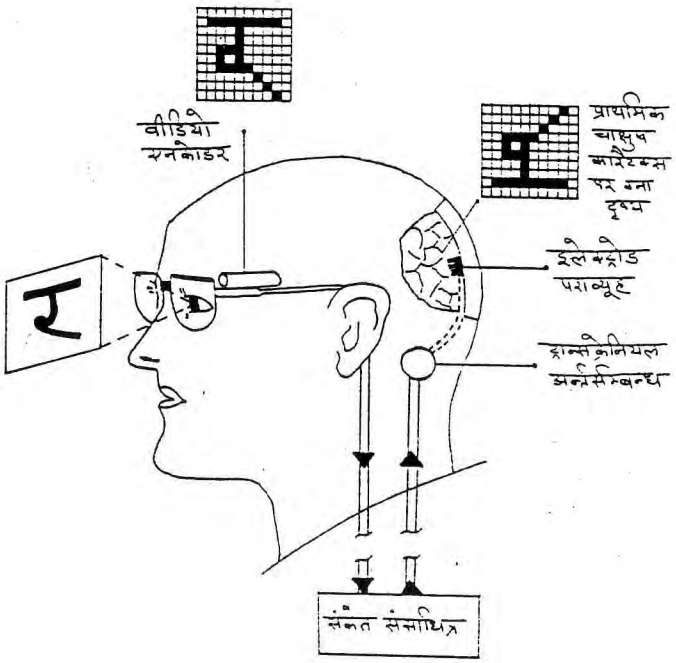

चित्र-4

2) इलेक्ट्रोड व्यूह में विभिन्न-विभिन्न क्रम से यदि विद्युत धारा प्रवाहित की जाये तो अलगं-अलग प्रकार के प्रतिरूप प्राणी को दिखायी पड़ते हैं ।

3) विद्युत धारा की आवश्यक मात्रा में समय के साथ परिवर्तन नहीं होता है । अर्थात जब तक आरोपित व्यूह अपने स्थान पर रहे तब तक उतनी ही मात्रा में विद्युत धारा की आवश्यकता होती है ।

श्री डोबेले आदि के प्रयोग में विद्युत धारा टेलीमीट्री द्वारा प्रवाहित नहीं की गयी थी वरन एक ट्रांसक्रेनियल संबंधक जो कि कान के पीछे आरोपित किया गया था, द्वारा की गयी थी । उन्होंने भी लगभग वही परिणाम प्राप्त किये जो श्री ब्रिन्डले ने । इन प्रयोगों से यह तो सिद्ध हो गया कि यदि प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स को विद्युत धारा द्वारा उत्तेजित किया जाये तो दृष्टिहीन प्राणी को रोशनी के प्रतिरूप दिखायी देते हैं परंतु उपयुक्त तकनीकी के अभाव में यह कार्य लगभग 20 वर्षों तक वहीं रुका रहा। पदार्थ एवं सूक्ष्म संविरचन तकनीकों के अप्रत्याशित विकास ने वर्तमान दशक में इस कार्य को गति प्रदान की जिसका श्रेय श्रीमान रिचार्ड नारमैन और उनके सहयोगियों को जाता है ।

कृत्रिम दृष्टि का संभावित स्वरूप :

कृत्रिम दृष्टि का संभावित स्वरूप चित्र-4 में दिखाया गया है । एक विडियो एनकोडर (Video encoder) की सहायता से बाहर के दृश्य का एक पिक्सेलाइज्ड विद्युतीय प्रतिरूप प्राप्त कर लिया जाता है। यह विडियो एनकोडर आसानी से उपलब्ध है और इसे एक चश्मे की कमानी पर आसानी से स्थापित किया जा सकता है । विडियो एनकोडर से प्राप्त विद्युतीय प्रतिरूप एक संकेत संसाधित से जोड़ दिया जाता है । संकेत संसाधित्र इस प्रतिरूप को किसी अन्य प्रतिरूप में संसाधित कर देता है । ये संसाधित संकेत एक ट्रांसक्रेनियल अंतर्संबंध (Transcranial Interconnect) को जोड़ दिये जाते हैं जो कि इलेक्ट्रोड पराव्यूह में विद्युत धारा प्रवाहित करते हैं । इस विद्युत धारा से उत्तेजित कोशिकाएं फॉस्फीनों का एक प्रतिरूप बनाती हैं जो उच्च कारटिकल केंद्र में बाहरी दृश्य का प्रतिबिंब उत्पन्न करता है और दृष्टिहीन प्राणी को बाहर का दृश्य दर्शाता है ।

इस प्रणाली का वियोजन (Resolution) इस बात पर निर्भर करता है कि इलेक्ट्रोड पराव्यूह में कितने इलेक्ट्रोड हैं एवं सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संकेत संसाधित्र किस हद तक दृष्टि पटल एवं पार्श्व जेनिक्यूलेट नाभिक का संसाधन का कार्य कर सकता है ।

उपरोक्त स्वरूप के आधार पर श्री नारमैन एवं उनके सहयोगियों ने एक कृत्रिम दृष्टि यंत्र विकसित किया है । यंत्र के विभिन्न भागों का जैसे कि इलेक्ट्रोड पराव्यूह,

संकेत संसाधित्र आदि का विवरण नीचे दिया गया है :

इलेक्ट्रोड पराव्यूह :

वर्गाकार इलेक्ट्रोड पराव्यूह सिलिकॉन से तैयार किया जाता है। दिखने में यह बालों के ब्रश जैसा दिखायी देता है । इलेक्ट्रोड की लंबाई लगभग 1.5 मिमी एवं मोटाई 0.2 मिमी होती है । दो इलेक्ट्रोडों के बीच की दूरी लगभग 0.4 मिमी होती है । इलेक्ट्रोड पराव्यूह का आधार भी सिलिकॉन का ही होता है और इसकी मोटाई केवल 0.2 मिमी तथा लंबाई चौड़ाई दोनों ही 4.2 मिमी रहती है। इलेक्ट्रोडों की टिप बहुत ही सूक्ष्म और धातुलेपित रहती हैं। इस प्रकार के इलेक्ट्रोड पराव्यूह में करीब 100 इलेक्ट्रोड होते हैं ।

यद्यपि ये इलेक्ट्रोड इतने तीक्ष्ण होते हैं कि इनको प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स में आरोपित करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए परंतु क्योंकि इलेक्ट्रोडों की संख्या ज्यादा है इसलिए इस पराव्यूह को दबाव से चालित यंत्र की सहायता से आरोपित किया जाता है। इससे एक और लाभ मिलता है कि निवेशन/आरोपण के दौरान होने वाला अपघात कम से कम रहता है । प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स की कोशिकाओं को उत्तेजित करने के लिए इन इलेक्ट्रोडों द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है । प्रारंभिक प्रयोगों में यह पाया गया है कि 100 से 200 माइक्रो सेकंड समयावधि की एवं 20 माइक्रो एंपीयर आयाम की विधुत धारा आवेग इन कोशिकाओं को उत्तेजित करने में समर्थ है। इस प्रकार इस युक्ति में विद्युत शक्ति का खर्च भी कम से कम होता है ।

प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स में लगभग 1.3 सेमी.^{2} का क्षेत्रफल उपलब्ध है और इस हिसाब से 32x32 ज्यामिति का इलेक्ट्रोड पराव्यूह का उपयोग किया जा सकता है । उपयुक्त विडियो एनकोडर वगैरह भी इसके लिए उपलब्ध हैं परंतु प्रारंभिक प्रयोगों में सफलता होने के बाद ही 32x32 आकार का इलेक्ट्रोड पराव्यूह प्रयोग में लाया जा सकता है ।

संकेत संसाधित्र :

इलेक्ट्रोड पराव्यूह के बाद, संकेत संसाधित्र इस युक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स में बने प्रतिबिंब और बाहर के दृश्य के साथ फलनिक संबंध क्या है ? दूसरे, क्या इस फलनिक संबंध को उपलब्ध संकेत संसाधित्रों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ? इस कार्य के लिए स्वस्थ मनुष्यों पर प्रयोग करने की आवश्यकता है। इलेक्ट्रोड पराव्यूह में एक ज्ञात प्रतिमान से विद्युत धारा प्रवाहित की जा सकती है और मनुष्य को जो दृश्य दिखायी दे उसका प्रतिमान के साथ संबंध प्राप्त किया जा सकता है । परंतु यह कार्य इतना आसान नहीं है । कोई भी स्वस्थ मनुष्य इस प्रयोग के लिए इसलिए तैयार नहीं होगा कि वह कारटिल अंतरोंप का खतरा नहीं झेलना चाहता । दृष्टिहीन मनुष्यों पर भी यह प्रयोग करके देखा जा सकता है परंतु पूर्ण जानकारी प्राप्त करना कठिन कार्य दिखायी देता है । इन मुश्किलों को ध्यान में रखते हुए यह उपयुक्त लगता है कि संकेत संसाधित्र के अंदर कृत्रिम बुद्धिमत्ता निहित हो । न्यूरल अभिकलन की सहायता से यह असंभव नहीं है । इसमें शिक्षण प्रक्रम की सहायता से प्रयोगाधीन मनुष्य यह बता सकता है कि जो दिखायी दे रहा है वह बाहरी दृश्य से ताल मेल रखता है या नहीं। क्योंकि इलेक्ट्रॉनिकी उद्योग का विकास चरम सीमा पर है इसलिए इस प्रकार का संकेत संसाधित्र प्राप्त करने में कोई अड़चन दिखायी नहीं देती ।

वर्तमान परिस्थिति एवं समस्याएं :

आज इलेक्ट्रॉनिक तकनीकी इतनी विकसित हो गयी है कि कृत्रिम दृष्टि केवल एक कल्पना मात्र नहीं वरन यथार्थ में संभव है । पशुओं एवं मनुष्यों पर निरंतर प्रयोग किये जा रहे हैं और अपेक्षित सफलता प्राप्त हो रही है। परंतु एक उपचार के रूप में उपलब्ध होने में एक दशक और लग जायेगा । वर्तमान में एक और विकल्प युक्ति पर कार्य चल रहा है वह है कृत्रिम दृष्टि पटल का विकास। कृत्रिम दृष्टि पटल से उन दृष्टिहीनों को सहायता मिल सकती है जिसमें केवल दृष्टिपटल दोष है लेकिन प्रकाश तंत्रिका स्वस्थ है। कृत्रिम दृष्टि पटल को आरोपित करना भी इलेक्ट्रोड पराव्यूह के मुकाबले बहुत आसान है। परंतु इस दृष्टि पटल का अपने स्थान पर आरोपित रहना कुछ संदेहास्पद लगता है क्योंकि नेत्रों में प्राथमिक चाक्षुष कॉरटैक्स की अपेक्षा हलचल बहुत अधिक होती है। इस युक्ति का एक और लाभ भी है कि इसमें संकेत

संसाधित्र की आवश्यकता नहीं रहती। यह युक्ति कितनी कारगर सिद्ध होती है यह तो आने वाला समय ही बतलायेगा।

दोनों प्रकार की युक्तियों की पूर्ण सफलता में कुछ समस्याएं हमारे सामने हैं। कुछ तो शल्य क्रिया से जुड़ी हुई हैं जैसे कि शरीर द्वारा अंतरोंप को स्वीकार करना। यह ज्ञात होना परम आवश्यक है कि ये अंतरोंप कितने काल तक शरीर को बिना नुकसान पहुंचाये शरीर में कार्य कर सकते हैं। दूसरे, क्योंकि कोशिकाओं को विधुत धारा द्वारा उत्तेजित किया जाता है तो क्या रोगी को मिरगी के दौरे पड़ने की संभावना है। तीसरे, इलेक्ट्रोड पराव्यूह को आरोपित करने में मस्तिष्क को कितनी क्षति पहुंचती है। चौथे, इस प्रकार की युक्तियों एवं आवश्यक शल्य क्रिया में कितना खर्च होने की संभावना है और अंत में, क्या दृष्टिहीन मनुष्य इस युक्ति को आसानी से ग्रहण करेंगे ? इन प्रश्नों का उत्तर तो आने वाला समय ही दे पायेगा परंतु यह अनुसंधान और विकास आशा की किरण तो दर्शा ही रहा है।

❐❐❐

विज्ञान कविता

आओ पेड़ लगायें

आइए, पेड़ लगाकर
भटकती मानवता का
दिशाबोध करें,
पेड़
केवल पर्यावरण ही
शुद्ध नहीं करते
अपितु देते हैं चेतनता को
संवेदनाओं की साख।

पेड़
सुस्ताई संवेदना को छाया ही नहीं देते
अपितु भावुक मन को माया भी देते हैं,
शब्दों की
जो कहीं कहलाती है
संवेदना
तो कहीं रचनाधर्मिता।

आखिर रचनाधर्मिता के साक्ष्य भी तो
ये पेड़ ही हैं,
चाहे प्रणयन "महाभारत" का हुआ हो,
या फिर "रामायण" का
सब ही के चहेते रहे हैं पेड़

पेड़
धरती के बेटे हैं,
पेड़ ज्ञान विज्ञान की अस्मिता हैं,
नवीनता के प्रेरणा स्रोत।

आओ पेड़ लगाकर
ज्ञान को ही नहीं
विज्ञान को भी संवारें।

धरती मां है विशाल हृदया
यह सारहीन नहीं है,
रत्नप्रसू है
इसके अंतस में अपार संपदा है
भौतिक व भावनाओं की अक्षुण्ण निधि,

आओ पेड़ लगायें,
तन का ही नहीं
मन का भी पर्यावरण संवारें,
ताकि ग्रस न सके
कोई प्रदूषण का राहू।

पर्यावरण हमारी
उपलब्धियों का मूल है,
आओ पेड़ लगायें
भटकती मानवता को दिशाबोध दें,
नयी पीढ़ी को चेतना दें,
राष्ट्र के उत्थान व विकास में
सहभागी बनें,
आओ पेड़ लगायें।

डॉ. दिनेश चमोला,
संपादक "विकल्प",
भारतीय पेट्रालियम संस्थान, देहरादून - 248 005

मानव स्वास्थ्य

1. कैंसर रोगियों में आत्महत्या

नमिता शर्मा, (कैंसर मनोवैज्ञानिक)
एवं डॉ. अवधेश दीक्षित
जे. के. टाईप एल-4, मेडिकल कॉलेज कैंपस,
कानपुर - 2 (उ. प्र.)

हिंदुस्तान के एक आला कैंसर अस्पताल में कैंसरग्रस्त एक आई. ए. एस. अधिकारी द्वारा अस्पताल की ग्यारहवीं मंजिल से कूदकर आत्महत्या ! क्या यह ख़बर चौंकाने वाली नहीं ? क्या यह पढ़कर हम सबके जेहन में सैकड़ों प्रश्न चिन्ह नहीं उभरते जैसे कि क्या कैंसर इतना भी दर्दनाक हो सकता है कि जिसकी वजह से पढ़ा लिखा व्यक्ति भी हताश हो बेबसी में स्वयं का जीवन लेने में बिल्कुल भी हिचकिचाहट महसूस नहीं करता, क्या चिकित्सा विज्ञान में अभी तक ऐसे कोई प्रयास नहीं किये गये जिससे इस प्रकार की दुर्घटनाओं पर रोक लगायी जा सके या फिर इलाज कराने के दौरान क्या कारण उत्पन्न हो जाते हैं जिस वजह से रोगी यह घृणित हरकत कर बैठता है आदि-आदि ।

अक्सर यह देखने में आया है कि वे कैंसर रोगी जिनका मर्ज बढ़ी हुई अवस्था में होता है या फिर जिनको इलाज के दौरान तमाम शारीरिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है तथा जिनको आर्थिक संकट के साथ-साथ मानसिक तनाव के दौर से भी गुजरना पड़ता है, उन रोगियों में इलाज के दौरान कभी भी आत्महत्या करने का विचार सर उठा लेता है ।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा आंकड़ों के अनुसार कुल आत्महत्याओं में 23% आत्महत्या कैंसर की वजह से होती है। प्रारंभिक अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकले कि सामान्य लोग व कैंसर रोगियों में आत्महत्या का प्रतिशत लगभग बराबर ही होता है। लेकिन साथ ही साथ यह भी पता चला कि कैंसर आत्महत्याओं का वास्तविक प्रतिशत इसलिए भी प्रकाश में नहीं आ पाता क्योंकि घर में रहकर इलाज करा रहे रोगियों द्वारा की गयी आत्महत्या घर के लोग सामाजिक ग्लानि, तिरस्कार व शर्मवश छुपा लेते हैं ।

फिनलैंड एवं अमेरिका में पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा की गयी कैंसर आत्महत्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया । इसके अनुसार जहां फिनलैंड में महिलाओं का अनुपात सामान्य से दो गुना पाया गया वहीं यह प्रतिशत पुरुषों में डेढ़ गुना मिला । वहीं दूसरी ओर अमेरिका में यह अनुपात पुरुषों एवं महिलाओं में सामान्य से क्रमशः ढाई गुना व सामान्य जैसा पाया गया ।

पुरुष एवं महिलाएं, आत्महत्या करने के लिए हमेशा अलग-अलग तरीकों का प्रयोग करते हैं । जहां महिलाएं नींद या नशे की गोलियों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग करती हैं वहीं पुरुष फांसी, ऊंचाई से कूद जाना या फिर गोली मारने जैसे हिंसक तरीकों से स्वयं को ख़त्म कर डालते हैं । अस्पताल में इलाज करा रहे रोगियों की तुलना में घर में रहकर इलाज करा रहे कैंसर रोगी आत्महत्या ज्यादा करते हैं ।

स्वीडन में किये गये अध्ययन के अनुसार की गयी कुल कैंसर आत्महत्याओं में सिर्फ तैंतीस प्रतिशत मौतों में "सुसायड नोट" छोड़े गये । जिनमें यह स्पष्ट किया गया था कि "मुझे माफ कर दें," "मुझे समझने की कोशिश करें" और "मैं और ज्यादा तकलीफ नहीं सह सकता" ।

मुख, भोजन नली एवं गुर्दे के कैंसर से पीड़ित रोगी अन्य कैंसर रोगियों के मुकाबले आत्महत्या अधिक करते हैं । आठ वर्ष तक पुरुष कैंसर रोगियों द्वारा की गयी आत्महत्याओं पर किये गये एक अध्ययन में यह पाया गया कि उनमें 50% रोगी अत्यधिक मात्रा में शराब, तंबाकू के सेवन मे लिप्त थे और लगातार नशे का सेवन करने की वजह से वे मानसिक रूप से असंतुलित हो चुके थे और इस तथ्य से तो हम सभी वाकिफ हैं कि इस प्रकार के व्यक्तियों की सामंजस्य क्षमता निम्न स्तर की हो जाती है।

आत्महत्या के कारण :

कैंसर रोगियों में आत्महत्या के कारण निम्न हैं :

– रोग की बढ़ी अवस्था एवं पूर्णतया ठीक न हो पाना ।
– अवसाद एवं निराशा ।
– दर्द ।
– आंतरिक असंतुलन - (डिलीरियम) ।
– पूर्व विद्यमान मानसिक व्याधि ।
– थकान ।
– आत्महत्या का पूर्व इतिहास स्वयं या परिवार में ।
– असहायता ।
– अनियंत्रण और आशाहीनता ।

कैंसर आत्महत्याओं को रोकने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि रोगी में उन कारणों का पता लगाया जाये जिनकी वजह से वह यह खतरनाक कदम उठाने को मजबूर हो जाता है और वजह जानने के पश्चात मनोवैज्ञानिक तकनीकों की सहायता से उन कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाये ।

ऊपर बताये गये यदि सभी या फिर लगभग आधे लक्षण रोगी में विद्यमान हों तो रोगी खतरे के दायरे में आ जाता है ।

अब हम क्रमानुसार इन सभी कारणों की चर्चा करेगें ।

(क) रोग की बढ़ी अवस्था एवं ठीक होने की कम संभावना :

ज्यादातर कैंसर रोगी इस अवस्था में आत्महत्या करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार 88 कैंसर आत्महत्याओं में तकरीबन 45 रोगियों के ठीक होने की संभावना लगभग न के बराबर थी ।

(ख) अवसाद और निराशा :

कैंसर आत्महत्या के जितने भी मामले प्रकाश में आते हैं, उनमें से 50% में अवसाद मुख्य लक्षण के रूप में विद्यमान होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिन रोगियों में अवसाद की प्रधानता अधिक होती है, वे रोगी जनसामान्य से 25% ज्यादा खतरे के दायरे में होते हैं। मर्ज ज्यादा बढ़ जाने पर रोगी की शारीरिक क्षमता तो कम हो ही जाती है तब ऐसे में अवसाद का प्रतिशत 70% तक भी हो जाता है ।

अगर रोगी में अवसाद के साथ-साथ जीवन के प्रति निराशा का दृष्टिकोण भी विकसित हो जाये तब चिकित्सकों को यह समझने में देरी नहीं करनी चाहिए कि रोगी कभी भी आत्महत्या कर सकता है ।

स्लोन कैटरिंग कैंसर सेंटर (न्यूयॉर्क) में आत्महत्या संबंधी परामर्श के लिए आये कुल 1080 रोगियों में जहां एक तिहाई में अवसाद मुख्य कारण पाया गया वहीं आधे से ज्यादा रोगियों में समायोजन संबंधी मनोविकार मुख्य कारण थे ।

(ग) दर्द :

कैंसर में दर्द ज्यादातर बढ़ी हुई अवस्था में ही होता है। जहां सिर्फ 15% रोगियों में दर्द प्रारंभिक अवस्था में होता है, वहीं 30% रोगियों में दर्द दूरस्थ अंगों में फैलाव की अवस्था में होता है ।

जैसे-जैसे रोगी में मर्ज बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे दर्द की तीव्रता भी बढ़ती जाती है। भयंकर दर्द होने पर जहां रोगी का जीवन तो प्रभावित होता ही है वहीं दूसरी ओर परिवारजनों द्वारा इलाज में किया जा रहा सहयोग भी प्रभावित हो उठता है। आत्महत्या की संभावना से बचाने में दर्द का प्रभावी उपचार उपयोगी पाया गया है ।

(घ) डिलीरियम :

जब मर्ज की बढ़ी हुई अवस्था में कोई भी दवा कारगर साबित नहीं हो पाती है और विभिन्न शारीरिक कष्ट रोगी को जब-तब परेशान करते हैं, तब ऐसी अवस्था में रोगी अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और उस समय रोगी को दिन, स्थान, काल आदि का भी ध्यान नहीं रह पाता । ऐसे रोगियों का उपचार मनोवैज्ञानिकों एवं मनोचिकित्सकों के सहयोग से करना चाहिए ।

(ड) नियंत्रण की कमी और असहायता :

वे कैंसर रोगी जो मर्ज की वास्तविकता को स्वीकार करने में हिचकिचाहट दर्शाते हैं और जिनको इलाज के दौरान पग-पग पर सहारे की आवश्यकता होती है, उन रोगियों में आत्महत्या की वृत्ति जन्म ले सकती है। ठीक

हो पाने की असंभावना, पेशाब व पाखाने की आदतों में परिवर्तन, शरीर के किसी अंग का कट जाना, शल्य क्रिया से जननांगों में बदलाव, देखने सुनने की शक्ति का ह्रास, निगलने, खाना खाने में तकलीफ आदि लक्षण, जिन रोगियों में विद्यमान हों, उनका स्वयं पर नियंत्रण कम होने लगता है और ये रोगी बेचारगी व लाचारी महसूस होने पर मानसिक दबाव की वजह से आत्महत्या कर बैठते हैं।

(च) पूर्व विद्यमान मानसिक व्याधि :

पूर्व विद्यमान मानसिक व्याधि जैसे कि व्यक्तित्व विकार, नशीली दवाओं का सेवन, मद्यपान के लती, स्क्रीजोफ्रेनिया या फिर किसी मुख्य बीमारी का विद्यमान होना भी कैंसर रोगियों में आत्महत्या करने का प्रतिशत बढ़ाता है।

विश्व विख्यात कैंसर मनोवैज्ञानिक "डॉ. हॉलैण्ड" के अनुसार यह बहुत कम देखने को मिलता है कि बिना किसी पूर्व विद्यमान मानसिक व्याधि की मौजूदगी के रोगी खतरे के दायरे में आ जाये।

कैंसर आत्महत्या समूह को अगर हम 'अंसतोषी आश्रित' की पदवी से विभूषित करें तो अतिशयोक्ति न होगी। ये लोग चिड़चिड़े, क्रोधी, शिकायती, स्टाफ से असंतुष्ट रहने वाले व अति महत्वाकांक्षी होते हैं। अगर गौर से इस प्रकार के रोगियों का अध्ययन किया जाये तो यह पाया जायेगा कि ये लोग हमेशा ऐसा व्यवहार करते देखे जाते हैं जिससे इन पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान दिया जाये।

(छ) आत्महत्या का पूर्व प्रयास अथवा पारिवारिक इतिहास :

ऐसे रोगी जिन्होंने आत्महत्या का पूर्व प्रयास किया हुआ हो या फिर आत्महत्या का विचार रखते हों, उन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि जहां कुछ और खराब स्थिति उत्पन्न होती है तो बिना कुछ सोचे समझे ये लोग सर्वप्रथम समस्त कष्टों से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या का सहारा लेते हैं।

स्लोन कैटरिंग सेंटर, न्यूयॉर्क में इस वृत्ति की वजहसे लगभग 10% रोगी मनोवैज्ञानिक परामर्श के लिए भेजे जाते हैं।

स्वीडन में किये गये एक अध्ययन के अनुसार वहां पर की जाने वाली कुल कैंसर आत्महत्याओं में से 50% रोगियों ने आत्महत्या करने से पहले अपनी योजना / विचार परिवारजनों को व्यक्त कर दिये थे।

कुछ विशेषज्ञों की मान्यता है कि अगर कोई रोगी प्रथम प्रयास में असफल हो जाता है तो यह संभव है कि दूसरे प्रयास में वह पूर्ण रूप से सफल हो जाये।

(ज) थकान :

कैंसर का इलाज अक्सर एक बेहद लंबी प्रक्रिया से होकर गुजरता है, जिसमें कुछ परेशानियों के साथ-साथ बार-बार अस्पताल, चिकित्सकों से मिलना, विचार विमर्श और इसके अलावा आर्थिक बोझ भी शामिल होता है। इस लंबी प्रक्रिया में रोगी तो हैरान होता ही है उसके साथ परिवारजन भी कभी कभी ऊबने लगते हैं।

इस अवस्था में रोगी स्वयं को बेहद अकेला, थका व हारा हुआ महसूस करने लगता है और उसको शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक थकान कोहरा सा बन अपने घेरे में ले लेती है।

कैसे रोकें आत्महत्या को ?

मानसिक व शारीरिक परेशानियों के इस मोड़ पर अगर रोगी को भावनात्मक सहारा मिल जाये तो संयुक्त रूप से नकारात्मक सोच को दूर करने का प्रयास किया जा सकता है।

कैंसर रोगी तो मौत को गले लगा स्वयं परेशानियों से छुटकारा पा जाता है, पर वह अपने पीछे छोड़ जाता है - एक प्रश्नचिन्ह एवं तमाम अनबूझे सवाल। आत्महत्या के बाद का समय रोगी के परिवाजनों व हॉस्पिटल स्टाफ के लिए बेहद पीड़ादायक होता है क्योंकि उस दौर में परिवारजन दुख, ग्लानि, शर्म, समाज द्वारा तिरस्कृत होने का भय, अपराध भावना, क्रोध, वास्तविकता से पलायन आदि भावों से भरे होते हैं। सबके जेहन में यही प्रश्न उभरता है कि हमारी देखभाल में आखिर क्या कमी रह गयी जो रोगी हमें छोड़ कर चला गया। उस समय यह अत्यंत आवश्यक है कि परिजनों को किसी मनोवैज्ञानिक से परामर्श लेने की सलाह दी जाये जिससे वे लोग वर्तमान स्थिति से पूर्णतया सामंजस्य स्थापित कर सके।

दूसरी ओर कैंसर उपचार टीम के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे फिर से उसी रोगी के केस को संयुक्त रूप से बैठकर उसके सभी पहलुओं पर फिर से गहन विचार विमर्श करें और यह प्रयास करें कि कुछ नये तथ्य प्रकाश में आ सकें जिससे भविष्य में इसी प्रकार के किसी अन्य रोगी का इलाज बेहतर ढंग से किया जा सके ।

कैंसर प्रेरित आत्महत्याओं को रोकने के लिए आवश्यक है कि कैंसर उपचार टीम कुछ कारगर कदम उठाये । सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि चिकित्सक दल रोगी के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करे और कैंसर मनोवैज्ञानिक की सहायता से रोगी के रोग के बारे में समझ, जीवन के प्रति सोच, लक्षणों आदि के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें । इस अवस्था में रोगी की मानसिक स्थिति का पूर्णरूपेण अवलोकन आवश्यक हो जाता है क्योंकि अक्सर भावनात्मक रूप से कमजोर व्यक्ति ही आत्महत्या का प्रयास जल्दी करते हैं ।

तत्पश्चात यह जानना जरूरी है कि रोगी के द्वारा स्वयं या फिर परिवार में आत्महत्या का इतिहास तो नहीं है । अगर कोई पूर्व प्रयास किया गया तो कितना सफल रहा ।

कैंसर मनोवैज्ञानिकों के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि रोगी किन संसाधनों की मदद से आत्महत्या करना चाहता है । इस विषय पर सौहार्दपूर्ण वातावरण में रोगी के साथ विचार विनमय किया जाना चाहिए । इस विचार विमर्श का यह लाभ होगा कि अस्पताल में पूर्ण सुरक्षा व सावधानी बरती जा सकेगी ।

रोगी के बारे में समस्त जानकारी उपलब्ध हो जाने के बाद उसके मनोवैज्ञानिक व शारीरिक लक्षणों का उपचार किया जाना चाहिए । इलाज के दौरान रोगी के किसी करीबी मित्र या परिजन का सहयोग बेहद फायदेमंद साबित होता है ।

आत्महत्या की सोच रखने वाले रोगियों का इलाज अस्पताल में ही किया जाना चाहिए जिससे रोगी का बेहतर इलाज किया जा सके ।

❐❐❐

विज्ञान-कविता

पुच्छल तारा

कितना प्यारा कितना सुंदर,
लगे गगन में पुच्छल तारा ।
कई गुना पृथ्वी से मोटा
पर लगता है बिल्कुल छोटा
लंबी पूंछ दिखाकर लौटा
कितना सुंदर नाम, पुच्छल तारा ।
नील गगन का पुच्छल तारा
दिखने में है बिल्कुल भोला
मगर आग का जलता गोला
पर न किसी से कुछ भी बोला
चला गया चुपचाप बेचारा
दूर गगन में पुच्छल तारा ।
नियमित पथ पर फिरता भी है,
चलते हुए बिखरता भी है ।
टूट-टूट गिरता भी है ।
अचरज करता है जग सारा,
देख गगन में पुच्छल तारा
अंतरिक्ष की अदभुत माया
पार नहीं किसने भी पाया
नील गगन में पुच्छल तारा ।

शाह आलम सिद्दीकी,
रेस्ट हाउस नं. 15, बिछिया रेलवे कॉलोनी,
गोरखपुर (उ. प्र.) - 273 012

इलेक्ट्रॉन की खोज के सौ वर्ष

इलेक्ट्रॉन जो आज के संपूर्ण वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का मूल है, के अस्तित्व की खोज हुए सौ वर्ष बीत चुके हैं । यह वर्ष उसकी खोज का शताब्दी वर्ष है । आज से ठीक सौ साल पहले अप्रैल 1897 में ब्रिटिश भौतकविद जे. जे. टॉमसन ने इलेक्ट्रॉन की खोज की थी । इलेक्ट्रॉन का आवेश ऋणात्मक 1.6×10^{-19} कूलंब तथा द्रव्यमान 9.1×10^{-31} किग्रा. होता है । डॉ. टॉमसन को इस खोज पर 1906 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था ।

2. टौक्सोप्लाज्मोसिस

डॉ. सरमन सिंह, एम.बी.बी.एस., एम.डी.
डिपार्टमेंट ऑफ लेबोरेटरी मेडीसिन, अखिल भा. आ. सं., नयी दिल्ली-110 026

टौक्सोप्लाज्मोसिस एक जूनोटिक अर्थात जानवरों से मनुष्यों में फैलने वाली बीमारी है। यह बीमारी एक सूक्ष्मदर्शीय पैरासाइट (परजीवी) से होती है, जिसे टौक्सोप्लाज्मा गोन्डाई कहते हैं। यह एक केले के आकार का प्रोटोजोअन परजीवी है। जो 8-10 माइक्रोमीटर लंबा और 2-4 माइक्रोमीटर मोटा होता है। इस परजीवी का प्रजनन मुख्यतया बिल्ली या उसी परिवार के मांसाहारी जीवों (जैसे शेर, चीता आदि) की आंतों में होता है, और परिपक्व परजीवी इन जानवरों के मल द्वारा मिट्टी या पानी में बाहर आता है। जहां यदि सर्दी या गर्मी का प्रकोप अत्यधिक न हो तो यह परजीवी कई महीनों तक जीवित रहता है। संक्रमित पानी या मिट्टी का प्रयोग अगर सब्जी के उत्पादों में किया जाये तो इन उत्पादों का प्रयोग या ऐसे संक्रमित पानी पीने वाले दूसरे जीवों में इसका संक्रमण हो जाता है।

मनुष्यों में इसका संक्रमण मुख्यतया तीन प्रकार से हो सकता है :

1) बिल्ली के मल से संक्रमित पानी के पीने या मल संक्रमित पानी या मिट्टी द्वारा सिंचित कच्ची सब्जियों या सलाद का प्रयोग करने से।

2) बिल्ली के मल को छूने से और हाथों को अच्छी तरह साफ न करने से।

3) टौक्सोप्लाज्मा से संक्रमित जीवों (माध्यमिक पोषक) जैसे भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गी आदि का कच्चा या अधपका मांस खाने से या उसे काटते समय।

4) वर्तमान में संक्रमित गर्भवती मां से नाल द्वारा बच्चे में।

5) संक्रमित ऊतक (टिशू) या संक्रमित रक्त का असंक्रमित मनुष्य में प्रत्यारोपण करने से।

टौक्सोप्लाज्मा एक स्वास्थ्य एवं आर्थिक समस्या :

टौक्सोप्लाज्मा विश्व के लगभग हर देश में पाया जाता है। अत: इसका संक्रमण मनुष्य एवं पशुओं दोनों में हो सकता है। विकसित देशों में मांस का अत्यधिक प्रयोग एवं अधपके मांस का अन्य खाद्य पदार्थों में सेवन इस परजीवी की महत्ता और बढ़ा देता है। सयुंक्त राज्य अमेरिका में लाखों डॉलर खाद्य मांस की जांच पर खर्च किये जाते हैं कि मांस टौक्सोप्लाज्मा मुक्त हैं या नहीं, और केवल संक्रमण मुक्त मांस ही बाजार में बेचा जाता है। अत: विकसित देशों जैसे अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्विजरलैंड आदि देशों में जहां मांस एक मुख्य भोजन है, मांस देने वाले जानवरों में टौक्सोप्लाज्मा का संक्रमण इन देशों की मांस तैयार करने वाली एवं बेचने वाली संस्थाओं को करोड़ों डॉलर का नुकसान कर सकता है।

इन देशों में जिन जानवरों का मांस खाने में अत्यधिक प्रयोग होता है, वे हैं- सुअर, गाय-भैंस, भेड़-बकरी तथा मुर्गी एवं बतख। टौक्सोप्लाज्मा का संक्रमण सुअर और भेड़ में सर्वाधिक पाया जाता है। हांलाकि भारत में मांस को अच्छी तरह पकाकर खाने की प्रथा के कारण मांस खाने के द्वारा यह संक्रमण मनुष्यों में न के बराबर होता है। लेकिन मांस काटने वालों या मांस को धोते समय गृहणियों में यह संक्रमण प्राय: हो सकता है। हमारे द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में दिल्ली के मांस काटने वालों में इसका संक्रमण, साधारण जनता से लगभग चार गुना अधिक पाया गया है।

मांस बेचने वाले संस्थानों के व्यापार पर इसका प्रतिकूल असर होने के साथ-साथ किसानों पर भी इस संक्रमण का काफी प्रभाव पड़ता है। यद्यपि भारत में इस विषय पर अधिक शोध की आवश्यकता है, लेकिन अमेरिका में किये गये शोधों से पता चलता है कि भेड़ और बकरियों में गर्भपात का सबसे बड़ा ज्ञात कारण भ्रूण में टौक्सोप्लाज्मा का संक्रमण हो जाना है (21%)। इस प्रकार गर्भपात से भेड़ एवं बकरियां पालने वाले किसानों को भारी क्षति हो सकती है। अधिकांश यह भी पाया गया है कि किसी भी भू-भाग में टौक्सोप्लाज्मा का संक्रमण वहां

के जानवरों एवं मनुष्यों में लगभग समान अनुपात में होता है। हमारे एवं अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किये सर्वेक्षणों से पता चला है कि कुमाऊं संभाग में वहां की भेड़-बकरियों में 75-80% और वहीं के 71% निवासियों में इसका संक्रमण हो जाता है। दूसरी ओर राजस्थान की बकरियों एवं वहां के निवासियों में इसका संक्रमण काफी कम पाया जाता है। भारतवर्ष के इन दोनों संभागों में कुछ मूलभूत विषमताएं इसका कारण हो सकती हैं जैसे कि कुमाऊं क्षेत्र में नमी और घने जंगलों में बिल्ली परिवार के बहुत सारे मांसाहारी जानवर फलते फूलते हैं और अपने मल-मूत्र से वहां के प्राकृतिक जलस्रोतों को संक्रमित कर देते हैं। दूसरी ओर राजस्थान एक शुष्क, ऊष्णीय प्रदेश है और जहां बिल्ली जैसे जानवरों की मात्रा बहुत कम होती है, साथ ही यदि बिल्ली के मल द्वारा वह परजीवी बाहर आ भी जाये तो भी प्रतिकूल वातावरण उसे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहने देता है, और उसका जीवन चक्र जल्दी ही समाप्त हो जाता है।

संक्रमण का मनुष्यों पर प्रभाव :

आमतौर से एक स्वस्थ वयस्क में यह संक्रमण कोई लक्षण पैदा नहीं करता है। लेकिन विशिष्ट परिस्थितियों में जब मनुष्य की रोग क्षमता (इम्यून सिस्टम) अत्यधिक कम हो जाती है जैसे एड्स की बीमारी, कैंसर, लंबे समय तक स्टीरोइड दवाइओं का प्रयोग, अंग-प्रत्यारोपण आदि परिस्थितियों में यह रोग-संक्रमण जानलेवा भी हो सकता है। बच्चों के कई अंग विकार जैसे सिर का बड़ा हो जाना, अंधापन, दिल की बीमारियां, दिमागी बीमारियां, धीमा मानसिक विकास, खून का न बनना आदि अधिकांश शिशुओं में देखी गयी हैं।

वयस्कों में बुखार, लसिका ग्रंथियों की शोथ, आंखों के पर्दे की सूजन, अंधापन, मस्तिष्क की सूजन और उसके बाद मृत्यु हो जाना आदि इसके गंभीर लक्षण हैं।

इस संक्रमण का निदान एवं इलाज :

इस संक्रमण का निदान मरीज के रक्त की जांच से किया जा सकता है। यह रक्त जांच बहुत सी प्रयोगशालाओं में ऐलाइजा या डी. ए. टेस्ट द्वारा होती है। लेकिन इस जांच की विश्वसनीयता उस प्रयोगशाला के कर्मियों की क्षमता, उपयोग में लाये गये रिएजेन्टस आदि पर काफी निर्भर करती है। पुराने और नये संक्रमण जांच हेतु क्रमशः आई. जी. जी. की उपस्थिति और आई. जी. एम. की अनुपस्थिति 6 महीने से अधिक पुराने संक्रमण को दर्शाती है। यद्यपि एड्स जैसे इम्यूनो कंप्रोमाइज्ड मरीजों में पुराना संक्रमण पुनर्विकसित (रिएक्टीवेट) हो जाता है। आई. जी. एम. की उपस्थिति नये संक्रमण की प्रतीक है। इसका महत्त्व बच्चों में अधिकतम है। इलाज के 3-6 माह के पश्चात् यह एंटीबॉडी अनुपस्थित हो जानी चाहिए, और उसके बाद दुबारा अधिक मात्रा में प्रदर्शित नहीं होती। अधिकांश लोगों में यह भ्रम है कि आई. जी. जी. की उपस्थिति भी खतरनाक है और उसके लिए अवांछनीय दवाओं की सिफारिश की जाती है। यहां तक कि कुछ महिला मरीजों को गर्भवती न होने की सलाह दी जाती है। ऐसी कोई भी सलाह विशेषज्ञ की राय के बिना अनुचित है। यदि कोई महिला गर्भधारण से पहले आई. जी. जी. या आई. जी. एम. या दोनों एंटीबॉडी निगेटिव हों और गर्भावस्था में पॉजीटिव हो जाती है तो चिंता का विषय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में टौक्सोप्लाज्मा का संक्रमण नाल द्वारा गर्भस्थ शिशु में हो सकता है। लेकिन इस दशा में मरीज एवं उसके चिकित्सक दोनों को संयम और समझदारी से काम लेना चाहिए। गर्भवती के खून की जांच किसी अच्छी प्रयोगशाला से दो या तीन बार कराना उचित होगा। बच्चे को गिराने की बात सोचने से पहले यदि हर प्रयोगशाला से भी ऐसा पाया जाता है तो अल्ट्रासाउंड से यह पता लगाना चाहिए कि शिशु में कोई विकृति है या नहीं। नहीं भी हो तो भी अल्ट्रासाउंड की मदद से एमिन्योटिक थैली के पानी का नमूना आई. जी. जी., आई. जी. एम. एंटीबॉडी तथा टौक्सोप्लाज्मा के डी. एन. ए. की पॉलीमरेज चेन रिएक्शन द्वारा जांच कराने के लिए संदर्भ प्रयोगशाला में भेजना चाहिए और साथ ही साथ स्पाइरामाइसिन (1 ग्राम, दिन में तीन बार 21 दिन या अधिक) शुरू कर देना चाहिए। इस दवा का प्रभाव सर्वाधिक इस संक्रमण की नाल से आगे न जाने देने में होता है। अतः जब भी इस संक्रमण का संदेह हो,

इसका सेवन शुरू किया जा सकता है लेकिन स्पाइरामाइसिन के सेवन से, गर्भस्थ शिशु को हुई पूर्व क्षति को पुनः ठीक नहीं किया जा सकता। इस दवा का मां या शिशु पर कोई दुष्प्रभाव नहीं देखा गया है। संदर्भ प्रयोगशाला की पॉजीटिव रिपोर्ट आने पर चिकित्सक अपने अनुभव और विवेक के अनुसार पाइरीमीथामिन + सल्फाडाइजिन (दोनों को मिलाने से इनका असर आठ गुना अधिक हो जाता है) 0.5 - 1 मिगा. प्रति किलो के हिसाब से ल्यूकोवोरिन कैलसियम के साथ दी जा सकती है। ल्यूकोवोरिन की उपस्थिति में इन दवाइयों के मां और बच्चे पर दुष्प्रभाव काफी कम हो जाते हैं। लेकिन कुछ व्यक्तियों में सल्फाडाइजिन से एलर्जी हो सकती है, खून बनाने वाली मज्जा काम करना बंद कर सकती है, परंतु संक्रमित शिशु में टोक्साप्लाज्मा के कारण विकृतियां अत्यधिक कम पायी जाती हैं। यदि गर्भवती चाहे तो चिकित्सक गर्भपात भी कर सकते हैं। एड्स के मरीजों में स्पाइरामाइसिन के स्थान पर अधिक प्रभावशाली दवाओं जैसे पाइरीमीथामिन, सल्फाडाइजिन, किलि-डामाइसिन, पैन्टामिडिन, डैप्सोन, एजिथ्रोमाइसिन, क्लैरीथ्रोमाइसिन, ऐरीथ्रोमाइसिन आदि का सेवन शोधाधीन है।

रोकथाम के उपाय :

आई. जी. जी. सकारात्मक (पोजिटिव) व्यक्तियों को पुनः संक्रमण होने का भय न के बराबर होता है। लेकिन एंटीबॉडी नकारात्मक (निगेटिव) लोगों, मुख्यतया गर्भवती महिलाओं को इससे बचने के उपाय अवश्य करने चाहिए, जिससे गर्भावस्था में संक्रमण न हो सके। इसके लिए निम्नलिखित उपायों को भली भांति प्रयोग में लाना चाहिए :

1) गर्भावस्था के दौरान घर में बिल्ली नहीं रखनी चाहिए। खासतौर से बिल्ली के बच्चे।

2) गर्भावस्था में बगीचे की मिट्टी और मल-जल (सिवेज) को नंगे हाथों से नहीं छूना चाहिए। हाथों में दस्ताने पहन कर ही काम करना चाहिए।

3) यदि बिल्ली घर में मल कर देती है तो दस्ताने पहनकर उसे पहले ब्लीचिंग पाउडर से ढक देना चाहिए और 30-40 मिनट बाद उसमें ब्लीचिंग पाउडर या लाइसौल मिलाकर विसर्जित करना चाहिए।

4) सलाद एवं कच्ची सब्जियां अच्छी तरह धोने के बाद ही खानी या इस्तेमाल करनी चाहिए।

5) मांसाहारी लोगों को मांस अच्छी तरह पकाने के बाद ही खाना चाहिए। पकने से पहले चखना भी नहीं चाहिए एवं पकाने से पहले मांस काटने वाले औजारों, बर्तनों एवं हाथों को गर्म पानी और साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

6) गर्भवती महिलाओं को गर्भाधारण के प्रथम एक या दो महीनों में ही टौक्सोप्लाज्मोसिस की जांच करा लेनी चाहिए और विशेषज्ञ से परामर्श करना चाहिए।

□□□

विज्ञान कविता

वैज्ञानिक आविष्कार

ट्रिविचिक ने रेल बनायी
राइट ने विमान उड़ाया।
कोलटन क्यों पीछे रहता
उसने भी जलयान बनाया।
सिनेमा ले आये एडीसन
सुनने को नये-नये चितगान।
बढ़ाने सबका मनोरंजन
दिया मार्कोनी ने रेडियो दान।
बेल ने टेलिफोन बनाया
घर बैठे वार्तालाप कराया।
गुटैनबर्ग ने प्रेस चलाया
छापे का साधन बतलाया।
एक्सरे के दाता रॉन्जन
फाउन्टेनपेन के वाटरमैन।
कर नित नये-नये अनुसंधान
कर ले तू, जग का कल्याण
कैसे भूलेगा इनको इंसान,
धन्य हो वैज्ञानिक आविष्कार।

निसार अहमद
द्वारा श्री एकबाल अहमद,
भारतीय जीवन बीमा निगम,
"मंडल कार्यालय" जुबिली रोड,
प्रतिभा कॉम्पलेक्स, गोरखपुर - 273 001

टिप्पणियां

1. बुराँश - एक पुष्प वृक्ष

जब कोई पर्यटक मार्च-अप्रैल के महीने में उत्तराखंड के वन-मार्गों से गुजरता है तो उसे गुलाबी-लाल फूलों से आच्छादित सैकड़ों वृक्ष बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। वनों के हरे-भरे वृक्षों के बीच यत्र-तत्र फैले हुए, असंख्य फूलों से लदे ये पेड़, वन तथा संपूर्ण वातावरण को सुंदर, मोहक और सुरुचिपूर्ण बना देते हैं। इन पुष्प-वृक्षों का नाम गढ़वाल में बुराँश तथा कुमायूँ में बुरोंश कहा जाता है। हिंदी में इसे बुरांश कहते हैं तथा इसका वानस्पतिक नाम रोडोडेन्ड्रोन आर्बोरियम (Rhododendron Arboreum) है।

यों तो बुरांश हिमालय क्षेत्र में समुद्र सतह से 1300 से 3300 मीटर की ऊंचाई वाले अधिकांश स्थानों पर पाया जाता है किंतु उत्तराखंड अर्थात् उत्तरप्रदेश की ऊंची पहाड़ियों पर यह बहुतायत से मिलता है। इसके फल साधारण तथा बहुत छोटे होते हैं किंतु फूल काफी बड़े, गुलाबी-लाल, सुंदर तथा मोहक होते हैं, इसीलिए यह वृक्ष अपनी अलग तथा विशिष्ट पहचान रखता है।

बुरांश सदाबहार वृक्ष है। इसकी औसत ऊंचाई दस मीटर होती है। पत्तियां 7.5 से 15 सेंमी. तक लंबी तथा 3 से 5 सेंमी. तक चौड़ी होती हैं। इन पत्तियों को जानवर चाव से खाते हैं। जलवायु की विभिन्नता के अनुसार प्राय: फूल जनवरी से जून तक खिलते हैं। अधिकांश स्थानों पर भरपूर फुलाई मार्च-अप्रैल में होती है।

बुरांश के फूल का दलपुंज लगभग दस सेंमी. व्यास वाला होता है जिसमें घंटी के आकार के अनेक दल होते हैं। इन दलों के भीतर जायांग तथा पुंकेसर होते हैं। प्रत्येक वृक्ष में सैकड़ों की संख्या में पुष्प खिलते हैं। विशालकाय वृक्षों में तो इनकी संख्या हजारों में होती है। इसीलिए पुष्पाच्छादित वृक्ष किसी दुल्हन की भांति सजे-धजे प्रतीत होते हैं।

बुरांश का पेड़ सुंदरता तथा शोभा के लिए तो प्रसिद्ध है ही, सदाबहार वृक्ष होने के कारण यह पर्यावरण तथा मृदा संरक्षण में भी सहायक है।

मनुष्य के लिए बहुउपयोगी है बुरांश का फूल। इसका दलपुंज स्वाद में खट्टा-मीठा होता है। इसीलिए बच्चे इसे बड़े चाव से खाते हैं। इसकी चटनी बनती है तथा अचार भी डाला जाता है। आजकल बुरांश के फूल से जैम, जैली, जूस आदि बनाये जा रहे हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय है रोडोडेन्ड्रोन जूस अथवा बुरांश का शरबत। इसकी आजकल बड़ी मांग है तथा नगरों में भी खूब बिक रहा है। यह जूस स्वाद में बहुत अच्छा होता है, गरमी को शांत करता है, उदर रोग, हृदयरोग, तथा रक्त विकार में यह बहुत लाभदायक है। ग्रीष्म ऋतु में शीतलता प्रदान करने वाला होने से इसकी मांग बढ़ती जा रही है। इसमें अनेक खनिज भी पाये जाते हैं।

बुरांश के फूलों से बना शहद स्वादिष्ट तथा रोग-निवारक है। इस प्रकार बुरांश का फूल आर्थिक लाभ पहुंचाने वाला भी है। फूलों को तोड़ लेने से वृक्ष को कोई हानि भी नहीं होती।

मोहन चंद्र कबड्वाल,
हायर सेकंडरी स्कूल-मुक्तेश्वर, नैनीताल

2. कड़वी नीम के मीठे लाभ

नीम का पेड़ भारतीयों के लिए सहज पेड़ नहीं अपितु कल्पवृक्ष की भांति है। यह भारतीय जनमानस की धार्मिक आस्था से जुड़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों में नीम के वृक्ष को 'देवी' के रूप में पूजा जाता है। छोटी चेचक की बीमारी में नीम की पत्तियों का प्रयोग किया जाता है।

"नीम" अथवा "मारगोजा" वृक्ष मेलियेसी कुल से संबंधित है। इसका वानस्पतिक नाम "एजाडीरेक्टा इंडिका" है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में लगभग डेढ़ करोड़ नीम के पेड़ हैं, जिनमें से आधे से अधिक उत्तर प्रदेश में और शेष तमिलनाडु, कनार्टक, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र व गुजरात में हैं। नीम का पूर्ण विकसित वृक्ष (लगभग 70 वर्ष आयु का) 50 किग्रा. तक बीज दे सकता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष 7.5 लाख टन बीज उपलब्ध होने चाहिए। पूरी तरह पके फल स्वत: पेड़ से नीचे गिर जाते हैं। बीजों को एकत्रित करने का कार्य जुलाई से सितंबर तक किया जाता है।

यह एशिया उपमहाद्वीप के अधिकतर उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय अर्द्ध शुष्क व आर्द्र भागों में पाया जाता है। अफ्रीकी देशों में बसने वाले भारतीय इसे अफ्रीका ले गये। अफ्रीका में यह पूर्व में सोमालिया से लेकर पश्चिम में नाइजीरिया भांतितानिया, टोगो तक विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। इतना ही नहीं, फिजी में प्रवेश के बाद यह दक्षिण प्रशांत के अन्य कई द्वीपों में भी फैल चुका है। त्रिनिडाड से यह वेस्टइंडीज के दूसरे द्वीपों और मध्य व दक्षिणी कैलीफोर्निया में लगाया जा रहा है। मलेशिया तथा फिलीपीन्स में इसे अन्य उपयोग के साथ ईंधन व लकड़ी के स्रोत के रूप में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त किया जाता है।

नीम के बीज का निष्कर्ष (जैसे नीम का तेल), नीम की जड़ों, पत्तियों तथा छाल के निष्कर्ष का उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों के रूप में प्राचीन काल से होता आया है। नीम के वृक्ष को आयुर्वेद में 'सर्व रोग निवारिणी' कहा गया है। इसका तेल टिटनेस, कोढ़ की प्रारंभिक अवस्था, एक्जिमा, पित्ती, गलसुआ, अपच और खाज-खुजली, दाद इत्यादि में काम आता है। नीम की पत्तियों का रस पीलिया और त्वचा संबंधी रोगों को ठीक करने में उपयोगी है।

नीम की टहनियां एशिया तथा अफ्रीका के कई देशों में 'दातौन' के रूप में काम आती हैं। नीम की छालों का रस कई टूथपेस्टों में आवश्यक घटक के रूप में इस्तेमाल होता है। नीम के साबुन (मार्गो) में नीम के बीज से निकाला गया तेल प्रयोग किया जाता है। पिछले चार दशकों से खादी एवं ग्रामोद्योग परिषद अखाद्य नीम तेल से साबुन बनाने को प्रोत्साहन देती आ रही है। नीम के तेल की खासकर दक्षिण भारत के औद्योगिक क्षेत्रों में भारी मांग है। तेल निकालने के बाद बची हुई खली की भारी मांग खाद के रूप में है क्योंकि यह जड़ों में लगने वाले कृमियों को मार डालती है। भंडारण तथा वस्त्रों को सुरक्षित रखने में इसकी पत्तियों का प्रयोग भारत में प्राचीन काल से होता आया है। भारत में नीम के बीजों का वार्षिक उत्पादन 1,00,000 टन है जिसका उपयोग केवल नीम के तेल के निष्कर्षण के लिए किया जाता है।

नीम के बीजों से तेल निष्कर्षण के बाद बची नीम की खली कृषि, मुर्गी पालन एवं पशुपालन में बहुपयोगी है। नीम की खली एक अच्छी जैविक खाद है। इसे मिट्टी में मिलाने से फसल पर कवक, निमेटोडों आदि का संक्रमण नहीं होता। खली में उपस्थित "ट्राइटर्पीन" नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की दर को कम करके पौधों को अधिक मात्रा में नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं तथा नाइट्रोजन ह्रास को रोकते हैं। इसके अतिरिक्त खली पशुओं के लिए अत्यधिक पोषक चारा है। मुर्गियों को भी यह क्षुधावर्धक के रूप में दी जाती है।

वैज्ञानिकों के सतत प्रयास से नीम के कवकनाशी, जीवाणुरोधी, विषाणुरोधी, मलेरियारोधी तथा मधुमेहरोधी गुणों का पता लगाया जा चुका है। इसकी पुष्टि शुक्राणुनाशी के रूप में भी की जा चुकी है।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक महत्वपूर्ण खोजों के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला गया कि वनस्पतियों का औषधीय गुण उनमें अत्यंत अल्पमात्रा में विद्यमान 'क्रियाशील अवयव' (Active ingredient) में होता है। देश-विदेश में नीम के विभिन्न भागों (छाल, पत्ती, फल और बीज) का रासायनिक अध्ययन किया गया है। इन रासायनिक अध्ययनों के फलस्वरूप अनेक अवयव पृथक किये गये हैं (देखिए तालिका-1)

नीम के जीवनाशी गुणों की पहचान एक जर्मन कीट विज्ञानी डॉ. हेनरिख श्मूटर ने की। 1959 में जब सूडान में टिड्डियों के एक दल ने फसली खेतों पर हमला किया तो डॉ. श्मूटर ने देखा कि खेत के सारे वृक्ष और फसल टिड्डियों के आक्रमण से नष्ट हो चुकी थी। सिर्फ एक नीम का पेड़ था जो ज्यों का त्यों अब भी लहलहा रहा था। बस उसी क्षण उन्होंने नीम पर शोध करने की ठान ली और तब से नीम के कीटनाशक गुणों की खोज करना उनके जीवन का ध्येय बन गया। नीम के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लिमोनाइड एजेडिरिक्टन की खोज डॉ. हेनरिख श्मूटर ने ही की थी।

भारत में इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस बैंगलूर के वैज्ञानिकों ने नीम के एक लिमोनाइड "निंबिन" की पहचान की। आज भारतीय कंपनियों द्वारा निर्मित

तालिका-1 : नीम के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले रासायनिक अवयव

रासायनिक अवयव	नीम के विभिन्न भाग	वैज्ञानिक जिन्होंनें खोज की
तिक्त क्षार (एल्केलाइड) मार्गोसिन एवं सोडा	छाल	कर्निस (1856)
रेजिन	छाल	ब्राटन
सल्फर, रेजिन, ग्लूकोसाइड	नीम का तेल	राय एवं चटर्जी
निम्बीडिन	नीम का तेल	सिद्दीकी एवं मित्रा (1945)
तिक्त अवयव, वेक्यानिन	फल	अमीरचंद (1945)
रवेदार तिक्त पदार्थ निंबिन	जड़-छाल	मित्रा (1953)
स्टेरॉल एवं आवश्यक तेल	तने की छाल	भट्टाचार्य एवं सहयोगी (1953)
क्वेरसीटिन, स्टेरॉल	पत्तियाँ	एस. पी. व शाक एवं सहयोगी (1968)

नीमॉक, नीमगार्ड, वेलग्रो, निमोनॉल, निंबीसिडीन, निमोनॉल, आर डी-1 रिपेलिन जैसे कई नीम आधारित कीट नाशक उत्पाद बाजार में उपलब्ध हैं।

लिमोनाइड नीम के जैविक रुप के सक्रिय रसायन हैं जो कीट प्रतिकर्षक होने के साथ-साथ सफल कीटनाशक और जीवनाशक भी हैं।

नीम से निष्कर्षित एजेडिरेक्टिन, मेलियनटिऑल और सेलेनिन जैसे लिमोनाइड हानिकारक कीटों के लिए अत्यधिक प्रभावी कीटनाशक सिद्ध हुए हैं। एजेडिरेक्टिान एक ओर जहां कीट प्रतिकर्षी है तो दूसरी ओर एन्टीफीडेन्ट भी हैं और कीटों के हार्मोन संतुलन को भी बिगाड़ता है। इसके अतिरिक्त कीटों की नयी पीढ़ी के जन्म से पहले ही यह कीटों के लार्वा के कायांतरण को भी प्रभावित करता है। इसी प्रकार सेलेनिन भी आज बहुतायत में कीट प्रतिकर्षी के रुप में प्रयुक्त हो रहे संश्लेषित रसायन डाइ एथिल सेल्यूएमाइड से अधिक प्रभावी कीट प्रतिकर्षी सिद्ध हो रहा है। नीम से बने उत्पाद कई तरह के पादपनाशक कीटों के लिए दुश्मन साबित हो रहे हैं। इनमें झींगुर, शलभ, टिड्डियाँ, तितलियां आदि शामिल हैं। नीम के कीटनाशकों से पर्यावरण का प्रदूषण भी नहीं होता है।

डॉ. दिनेश मणि,
व्याख्याता, रसायन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद - 2

3. हल्दी - एक गुणकारी औषधि

वानस्पतिक भाषा में हल्दी को 'कुरकुमा लोंगा,' कहते हैं। संस्कृत में हरिद्रा, हिंदी में हल्दी, मराठी में हलद, गुजराती में हलदर, बंगाली में हलुद, तेलगु में पसुपु, तामिल में मजल, मलयालम में मनजल, चेन्नई में अरिसिन, फारसी में जर्दचाब, अग्रेजी में टरमरिक, अरबी में डरुक्स्सुकुर तथा पंजाबी में हलदर आदि नामों से जानी जाने वाली हल्दी प्राचीन काल से ही महत्त्व पूर्ण रही है।

हल्दी एक सर्वविदित द्रव्य है। यह शरीर की त्वचा के रंग को उज्जवल करती है अत: "इसे हरि वर्ण द्राति संशोध्यति" कहा गया है। अनेक गुणों के कारण संस्कृत में इसे कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे, सोने जैसा पीतवर्ण वाली होने से कांचनी, वर्ण को गोरा करने वाली होने से गौरी; कृमिनाशक होने से कृमिंधा, उबटन लेप आदि प्रसाधनों तथा स्त्री रोगों में उपयोगी होने से योषितया; वर्ण को सुंदर करने वाली होने से वख्रर्पिनी तथा बाजारों की शोभा बढ़ाने वाली होने से हट्टाविलासनी आदि।

हल्दी का उपयोग केवल शाक, दाल आदि खाद्य व्यंजनों में ही सीमित नहीं है, वरन इसका उपयोग कई औषधियों एवं घरेलू नुस्खों में भी किया जाता है। हल्दी में वे समस्त गुण विद्यमान हैं जो मानव शरीर को स्वस्थ एवं सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं। इसका

उपयोग औषधि के रूप में सर्दी, जुकाम, गले की खराश, ट्रांसिलाइटिस, कफ़ विकार, त्वचा विकार, प्रमेह, कामला, यकृत दोष, अतिसार, संग्रहणी, घाव तथा नेत्र की व्याधियों को दूर करने में होता है। हल्दी का प्रयोग कीटाणुओं को नष्ट करने में भी होता है। कई धार्मिक कार्यों में भी हल्दी का उपयोग होता है।

हल्दी के कुछ घरेलू नुस्खे इस प्रकार हैं :

i) झाईं-मुहासे दूर करने के लिए - पिसी हल्दी एक चम्मच, दो चम्मच बेसन, संतरे के सूखे छिलकों का बारीक पाउडर, आधा चम्मच दूध की मलाई व थोड़ा पानी मिलाकर गाढ़ा लेप बनाकर चेहरे पर लेप कर लें तथा 10 मिनट बाद गुनगुने गर्म पानी से चेहरा धो लें। नियमित रूप से यह प्रयोग करने पर एक माह में चेहरे के दाग धब्बे दूर होने लगते हैं।

ii) चोट एवं सूजन के उपचार में - पिसी हुई हल्दी में थोड़ा गीला चूना मिलाकर लेप बना लें तथा इसे चोट की जगह पर लगायें। इसी प्रकार एक गिलास गर्म दूध में एक चम्मच पिसी हल्दी एवं 10 ग्राम गुड़ घोलकर पियें इन दोनों उपचारों से चोट की सूजन एवं पीड़ा दूर होती है।

iii) गले की खराश दूर करें - गले में खराश होने या टॉंसिल्स में सूजन होने पर रात को सोते समय आधा कप गर्म दूध में आधा चम्मच पिसी हुई हल्दी घोलकर पी लें तथा फिर एक कप गर्म दूध और पी लें परंतु ठंडा पानी न पियें। 3-4 दिन में ही गले का खराश व टॉंसिल्स की सूजन दूर होती है।

iv) मसूड़ों का कष्ट दूर करें - आधा चम्मच पिसी हुई हल्दी, चौथाई चम्मच पिसा नमक एवं 4-5 बूंद सरसों का तेल मिलाकर मसूड़ों पर लेप करने से दांत एवं मसूड़ों के सभी कष्ट दूर होते हैं।

v) नेत्र दोष के उपचार में - नेत्र के दोष 'कन्जक्टेवाइटिस' में एक चम्मच पिसी हल्दी को दो कप पानी में डालकर उबालें एवं आधा कप पानी शेष रहने पर उसे कपड़े से छानकर शीशी में डाल लें तथा ड्रापर से दो-दो बूंद आँखों में डालें। इससे यह रोग दूर होता है।

vi) दमा के उपचार के लिए - दमे का अटैक होने पर पांच ग्राम पिसी हल्दी को पानी में मिलाकर पीने से लाभ मिलता है।

vii) बहता खून रोकने में - किसी अंग के कटने पर बहते खून को रोकने के लिए कटे अंग पर पिसी हल्दी की चुटकी भरने से बहता खून बंद हो जायेगा।

viii) पेट दर्द में - दही या छाछ में हल्दी मिलाकर पीने से पेट का दर्द दूर होता है।

ix) मधुमेह रोग में - बारह ग्राम शहद में तीन ग्राम पिसी हल्दी मिलाकर थोड़ा-थोड़ा लेकर चाटना चाहिए। यह क्रिया तीन माह तक करने एवं साथ में दो करेलों कर रस पीने से इस रोग को दूर करने में सहायता मिलती है।

x) कान से 'पस' आने पर - इसमें हल्दी को बारीक पीस कर सरसों के शुद्ध तेल में मिलाकर गर्म कर शीशी में भर लें व दिन में 2-3 बार कान में डालें तथा तीली पर रुई लगाकर 'पस' निकाल लें। इस क्रिया को 15 दिन तक करने से लाभ मिलता है।

xi) गठिया रोग में - इसकी चिकित्सा के लिए एक किलो हल्दी की गांठों को आग में भून लें व फिर उसे आग से निकालकर घिस लेते हैं। अब इसमें एक किलो गुड़ मिलाकर लड्डू बना लें। इसके अतिरिक्त काजू भी डाल सकते हैं। प्रतिदिन सुबह तुलसी या नींबू की चाय के साथ इसका सेवन करने से आराम मिलता है।

xii) हिचकी आने पर - पांच ग्राम हल्दी व पांच ग्राम उड़द की दाल मिलाकर पीस लें तथा इस चूर्ण को जलती चिलम में रखकर कश खींचने से हिचकियां तुरंत बंद हो जायेंगी।

xiii) विषैले कीड़ों के काटने पर - हल्दी पीसकर उसमें नींबू का रस मिला लें तथा इसको काटे हुए अंग पर लेप करने से विष का प्रभाव नहीं होता व दर्द भी कम हो जायेगा।

xiv) पीलिया रोग में - हल्दी को बारीक पीसकर तीन ग्राम की मात्रा को आधे किलो छाछ के साथ सेवन करें तथा गर्म पानी से स्नान न करें एवं खाने में गर्म मसाले न खायें अथवा हल्दी (2 ग्राम) को गाय के 25 ग्राम मक्खन में

मिलाकर प्रातः काल बिना कुछ खाये सेवन करने से इस रोग में लाभ मिलता है।

xv) प्रसव कष्ट में - महिला के गर्भ धारण करने के नवें मास में पांच ग्राम हल्दी पीसकर दूध के साथ नित्य सुबह व शाम सेवन करने से प्रसव कष्ट कम होगा तथा बच्चे का रंग तथा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

xvi) चेचक के दाग में - चेचक के दागों को ठीक करने के लिए ताजा दूध में हल्दी एवं गेहूं का आटा मिलाकर थोड़ा सा सरसों का तेल या ताजा क्रीम मिलाकर 'उबटन' तैयार कर लें। इसकी मालिश इन दागों पर करने से दाग ठीक होते हैं।

इसके अतिरिक्त, हल्दी एक विशेष टॉनिक के रूप में बढ़ती उम्र में शरीर को स्वस्थ रखने तथा कायाकल्प करने में काम आती है।

नवीन बोहरा एवं श्रीमती रेखा दाधीच,
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान,
न्यू पाली रोड, पो. ओ. कृषिमंडी, जोधपुर

4. स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान और इसके क्षेत्र

स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान, मानव जाति को विकिरण तथा अ-आयनीकृत विद्युत चुंबकीय विकिरण से क्षति तथा इससे बचने के उपाय के बारे में बताने वाला विज्ञान है। मानव को विकिरण के द्वारा होने वाले बुरे प्रभाव की जानकारी पहिले से थी भले ही इसका कारण पहले पता न चला हो। एक पुराने प्रमाण के अनुसार लगभग 1500 के आस-पास सैक्सानी के स्नीवर्ग खदान तथा बोहेमिया के जोकीमस्थाल खदान के आसपास के लोगों में फेफड़े की बीमारी, आयनीकृत विकिरण के कारण बहुतायत में पायी गयी। 1879 में हर्टिंग तथा हेस के अनुसार इस बीमारी का कारण खदान ही था परंतु इसका सही कारण 1896 के बाद पता चला जब रॉन्जन ने एक्स-किरण की खोज की तथा बेकरेल ने यूरेनियम से होने वाले विकिरण के प्रक्रम के बारे में पता लगाया। एक्स-तथा गामा-किरणों की खोज के बाद इनके लाभ तथा इनसे होने वाले दोषों की खोज होने लगी। इस दौरान क्रुक्स-नली के निर्माता ग्रुबे ने अपनी शोधों के आधार पर 1896 में यह घोषणा कि इन विकिरणों के कारण एरिथिमा जैसी बीमारी हो सकती है।

ग्रुबे, जो कि एक्स - किरणों के घातक परिणाम से भली-भांति परिचित थे, ने एक रोगी में हुए केरीनोमा (carinoma) नामक बीमारी की चिकित्सा के दौरान रोग-स्थल के अतिरिक्त सभी अंगों को सुरक्षा हेतु सीसे की परत से ढक दिया था और इस तरह रोगी को पहली बार विकिरण से होने वाली क्षति से बचाने के कारण, वे स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान के प्रथम स्वास्थ्य भौतिक शास्त्री के नाम से विख्यात हुए।

ग्रुबे को अपने अनुसंधान से ऐरिथिमा हुई थी। इसी तरह बेकरेल तथा मैडम क्यूरी को भी विकिरण से होने वाली क्षति को सहन करना पड़ा था। 1915 के आसपास एस. रश (S. Russ) ने भी विकिरण प्रभाव संबंधित जानकारी में एक महत्वपूर्ण योगदान किया। 1928 में अंतर्राष्ट्रीय विकिरण संरक्षण आयोग की स्थापना की गयी जिसके सौजन्य से लोगों में जानकारी पैदा करने के लिए एक पुस्तिका का संपादन भी प्रारंभ किया गया और इसी वर्ष अमेरिका में राष्ट्रीय विकिरण सुरक्षा संस्थान की स्थापना की गयी।

प्रथम विश्व युद्ध से लेकर 1930 तक, रेडियम को चिकित्सा उपयोगी तत्त्व समझा जाने लगा। चिकित्सक रेडियम का उपयोग धड़ल्ले से अस्पतालों तथा क्लीनिकों में करने लगे। इसे टॉनिक मान कर साधारण से साधारण लोग इसका उपयोग कर रहे थे और परिणामस्वरूप धीरे-धीरे यह जहर अपना जौहर दिखाने लगा और लोगों की असमय मृत्यु विकिरण के कारण होने लगी। रेडियम के पहले रोगी की मृत्यु 1925 में दर्ज हुए कैंसर के कारण हुई।

ए. एच. कॉप्टन तथा अन्य सहायक ने 1942 के बीच प्रस्तावित किया कि वैज्ञानिकों का एक नया और अलग दल बनाया जाय जो स्वास्थ्य समस्या का समाधान, नये उपकरण, औजार के साथ-साथ विकिरण की एक सीमा निर्धारित करेंगे। चूंकि यह दल स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ था इस कारण इसमें सहयोग करने वाले भौतिक शास्त्री

को स्वास्थ्य भौतिक शास्त्री कहा जाने लगा। इस दल के अध्यक्ष इ. ओ. वोलान बनाये गये। अन्य प्रमुख वैज्ञानिक एच. एम. पारकर, सी. सी. गैर्म्सटफेलडर, के. जे. मोरगान, आर. आर. कोमेय, जे. सी. हार्ट, ओ. जी. लैण्डसवर्क, एल. एस टेलर, एफ. फैल, आर. सिर्वट आदि थे। इस तरह 1942-43 के दरम्यान स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान नामक एक नये विज्ञान की नींव शिकागो विश्वविद्यालय में पड़ी।

चूंकि नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम का उन दिनों बहुत ही विस्तार हुआ और इससे संबंधित कई प्रयोगशालाएं, लॉस एलामोस, ब्रुकहैवेन, हैनफोर्ड, ओकरिन, बर्कले आदि स्थानों में खोली गयीं, जिस कारण हर नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम के पीछे स्वास्थ्य भौतिक शास्त्री की जरूरत होने लगी, परिणामस्वरूप इस नये विज्ञान का बहुत विस्तार हुआ और प्राय: प्रत्येक अस्पताल, राज्य जन सेवा चिकित्सा कॉलेज एवं विश्वविद्यालय, सैन्य संगठन प्रशिक्षण केंद्र, उद्योग के प्रत्येक केंद्रों में भौतिक चिकित्सक केंद्र खोले गये। 1982 के दौरान यह पाया गया कि इनमें काफी विकास हुआ और चिकित्सकों की संख्या लगभग 14,000 हो गयी थी। 1956 में स्थापित स्वास्थ्य विज्ञान समिति की सदस्यता संख्या 1982 में लगभग 5000 हो गयी। इस समिति के द्वारा एक शोध पत्रिका 'स्वास्थ्य विज्ञान' प्रकाशित हो रही है जो इससे संबंधित नयी-नयी बातों की जानकारियां लोगों तक पंहुचा रही है।

के. मॉगन की अध्यक्षता में रोम में संपन्न प्रथम अंतर्राष्ट्रीय विकिरण सुरक्षा महासभा के दौरान 'अंतर्राष्ट्रीय विकिरण सुरक्षा परिषद' की स्थापना 1966 में की गयी जिसके प्रथम अध्यक्ष के. मॉगन को बनाया गया और 1982 के दौरान इस परिषद की पंजीकृत समिति की कुल संख्या 28 तथा कुल सदस्यों की संख्या 10,000 थी, जो विश्व के लगभग 70 देशों से संबंधित थे।

1973-76 के दौरान इस विज्ञान का विस्तार 20 विश्वविद्यालयों में हुआ और इन विश्वविद्यालयों में स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान की पढ़ाई स्नातक तथा परास्नातक स्तर की होने लगी है, साथ ही साथ इनसे संबंधित अनेक शोधकार्य हेतु सुविधाएं तथा उपकरण तैयार किये जा रहे हैं जहां इस पर उच्च शोध अध्ययन भी किया जाने लगा है।

इस विज्ञान के विस्तार के साथ ही साथ इसकी विभिन्न शाखाएं बनायी गयीं जो भिन्न-भिन्न कार्यों के आधार पर वर्गीकृत हैं। स्वास्थ्य भौतिक शास्त्री के कुछ प्रमुख कार्य अग्रलिखित है :

(i) रेडियो सक्रिय पदार्थों को बनाने तथा उपयोग करने वाले उपकरणों का उचित ढांचा तैयार करना।

(ii) प्रयोगशाला के प्रारूप, विकिरणरोधी प्लेट, रिमोट, कंट्रोल उपकरण आदि का उचित चुनाव करना तथा नयी-नयी सलाह प्रदान करना।

(iii) प्रयोगशाला या रेडियोसक्रिय केंद्रों में सार्वजनिक मॉनीटरिंग करना ताकि संबंधित व्यक्तियों की छाती, पेशाब और इससे संबंधित जांच बिना किन्हीं कठिनाइयों के की जा सके और यह पता लगाया जा सके कि अपने शरीर में कौन कितना रेडियोधर्मी पदार्थों का संचय कर चुका है ताकि यह बताया जा सके कि किस स्थिति में यह हानिकारक हो सकता है।

(iv) सभी नाभिकीय रिएक्टरों के आस-पास के क्षेत्र, रेडियो सक्रियता प्राप्त स्थल, एक्स किरण के उपकरण, उच्च वोल्ट एक्सिलेटर के आस-पास के क्षेत्र, भौतिक तथा रसायन विज्ञान की प्रयोगशालाएं, धातुकर्मी प्रतिष्ठान तथा अन्य कार्य क्षेत्र में सर्वेक्षण करना।

(v) सभी विकिरण क्षेत्रों में समय के निश्चित अंतराल के दौरान सर्वेक्षण करवाने के लिए संबंधित अभियंता, अनुसंधानकर्ता आदि को सलाह देना, साथ ही साथ इस विकिरण से बचने के लिए सुरक्षायुक्त कपड़े, चदरें (उपकरण के चारों ओर) तथा रिमोट कंट्रोलर उपकरण आदि का उपयोग करने की सलाह देना।

(vi) रेडियोधर्मीय अवशेषों का जिसे कहीं फेंक दिया जाता है बिना किसी रुकावट के तुरंत सर्वेक्षण करना तथा इससे उत्पन्न होने वाले घातक परिणामों के बारे में जानकारी देते हुए प्रशासन से इसे तुरंत उस स्थान से हटाने या किसी गडढ़े में ढक देने की सलाह देना। मिट्टी, पानी, वायु आदि के निरीक्षण से रेडियो धर्मिता का पता लगाना।

(vii) किसी भी क्षण रेडियोसक्रिय किरणों से होने वाली क्षति से बचाव के लिए तत्पर रहना ।

(viii) आम लोगों को किरणों से स्वास्थ्य एवं शरीर संबंधी हानिकारक प्रभाव एवं उनसे रोकथाम के उचित उपाय सुझाना ।

स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान के वैज्ञानिक अन्य क्षेत्रों के वैज्ञानिकों जैसे भौतिक शास्त्री, रसायन शास्त्री, जीव वैज्ञानिक, अभियंतक वैज्ञानिक, भूगर्भ वैज्ञानिक, गणितज्ञ आदि के साथ मिलकर नित नये-नये तथ्यों का उजागर कर रहे हैं ।

इस अध्ययन के दौरान संबंधित वैज्ञानिक तथा अनुसंधानकर्ता निम्न स्तर से लेकर उच्च स्तर तक के अध्ययन करते हैं परंतु नाभिकीय, परमाण्विक, संरचनात्मक, प्लाज्मा, गैसीय, ठोसीय, कोशीय, जंतुवीय, तथा वायुपरिस्थितिकीय स्तर प्रमुख हैं ।

स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान में बहुत सारे उपकरणों का उपयोग भिन्न-भिन्न सर्वेक्षणों के दौरान किया जाता है । क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान गाइगर काउन्टर, आयन चैंबर, प्रोपोर्शनल काउन्टर तथा सिन्टीलेशन काउन्टर आदि का उपयोग किया जाता है । Ge-Li संसूचक का उपयोग रेडियो न्यूक्लाइड की ऊर्जा मापन में किया जाता है ।

ऊपर बताये गये स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान के विषय आयनीकृत विकिरण से संबंधित हैं जबकि इस विज्ञान के अंतर्गत अ-आयनीकृत विकिरणों से भी होने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है । परंतु अआयनीकृत विकिरण (अल्ट्रा वायलेट, माइक्रो तरंग, रेडियो आवृति, इन्फ्रा रेड, सोनिक, अल्ट्रासोनिक तथा इन्फ्रासोनिक) से संबंधित भौतिक चिकित्सा विज्ञान में वर्तमान में अपेक्षाकृत बहुत कम वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वास्थ्य भौतिक विज्ञान वैज्ञानिकों के लिए एक महत्वपूर्ण, रुचिकर तथा चुनौतीपूर्ण व्यवसाय है जिसके पीछे बहुत से कारण हैं । इस कार्यक्रम का सफल होना तभी कहा जा सकता है जब यह मानव तथा अन्य जातियों में होने वाले विकिरण के प्रभाव को स्पष्ट तथा सुविधापूर्वक पता लगा सके तथा इससे बचाव के रास्ते तैयार कर सके । इसको सफलता का श्रेय पूर्णरुपेण तभी दिया जा सकता है जब प्रत्येक नाभिकीय ऊर्जा संस्थान अन्य सभी उद्योगों के समान एक सुरक्षित उद्योग हो जायेगा ।

कृषिचयन,
एम. एस. सी. प्रथम वर्ष (भौतिक विज्ञान),
द्वारा डॉ. चतुर्भुज साहु,
रीडर एवं अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग,
गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह, बिहार 815301

5. मात्रकों का संसार एवं संसार के मात्रक

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में माप तौल के लिए मुख्यतः दो प्रणालियां प्रचलित थीं, यथा इंपीरियल प्रणाली एवं मीट्रिक प्रणाली ।

'इंपीरियल प्रणाली' ब्रिटेन एवं उसके संपूर्ण साम्राज्य में प्रचलित थी, जिसमें अमेरिका सहित विश्व के सभी अंग्रेजी भाषा भाषी वाले देश सम्मिलित थे । इस प्रणाली का प्रारंभ एंग्लो सैक्शन पद्धति द्वारा हुआ था तथा माप तौल की यह प्रणाली स्थानीय मानकों पर आधारित एवं कामचलाऊ थी । इसमें प्रायः मानव के हाथ को फुट तथा हाथ के अंगूठे व मध्य अंगुली को एक सीध में करने पर उनके मध्य की दूरी आधा फुट, हाथ की मध्य अंगुली से कंधे तक की लंबाई गज, एक जोड़ी बैलों से एक दिन में जोते गये खेतों के परिमाण के लिए एकड़, एक हजार कदमों को एक मील इत्यादि माना जाता था । स्पष्ट है कि इन मात्रकों में व्यक्ति व स्थान भेद की दृष्टि से अंतर आ जाता था । इस प्रकार से इन विलक्षण मापतौलों का उपयोग करते हुए इंपीरियल प्रणाली विकसित हुई । भारत के ब्रिटेन के अधीन होने से स्वभाविक रूप में इस प्रणाली का उपयोग भारत में भी हुआ । अभी भी भारतीय ग्रामीण परिवेश में इस प्रणाली के उपयोग को आंशिक रूप से देखा जा सकता है । कालांतर में यह प्रणाली अंग्रेजी प्रणाली या ब्रिटिश प्रणाली या फुट-पाउन्ड-सेकंड (F.P.S.) प्रणाली के रूप में जानी गयी । फुट-पाउंड-सेकंड की इस प्रणाली में लंबाई का मात्रक "फुट", द्रव्यमान का मात्रक "पाउंड" तथा समय का मात्रक "सेकंड" होता है ।

'मीट्रिक प्रणाली' फ्रांस एवं अन्य यूरोपीय देशों,

उनके उपनिवेशों तथा उनके अधीन देशों में चलती थी। वर्ष 1790 में फ्रांस ने सर्वप्रथम इस प्रणाली को अपनाया तथा नेपोलियन द्वारा इस प्रणाली का यूरोपीय देशों में प्रचार-प्रसार किया गया था। मीट्रिक प्रणाली को कालांतर में फ्रांसीसी प्रणाली या सेन्टीमीटर-ग्राम-सेकंड (C.G.S.) प्रणाली भी कहा जाने लगा। सी. जी. एस. प्रणाली में लंबाई का मात्रक "सेंटीमीटर", द्रव्यमान का मात्रक "ग्राम" तथा समय का मात्रक "सेकंड" होता है। वास्तव में सी.जी.एस. प्रणाली, एक अन्य प्रणाली मीटर-किलोग्राम-सेकंड (M.K.S.) प्रणाली के अपवर्तकों से ही बनी हुई है जो कि एम. के. एस. का छोटा रूप है। मीट्रिक प्रणाली में रेखीय माप के लिए मिलीमीटर, सेंटीमीटर, डेसीमीटर, मीटर, डेकामीटर, हेक्टोमीटर, किलोमीटर माना गया है जबकि क्षेत्रफल की माप के लिए वर्ग मिलीलीटर, वर्ग सेंटीमीटर, एअर, हेक्टेअर, वर्ग मीटर, वर्ग किलोमीटर का उपयोग किया जाता है तथा आयतन की माप के लिए मिलीमीटर, सेंटीलीटर, डेसीलीटर, लीटर, डेकालीटर, हेक्टोलीटर, किलोमीटर है जबकि द्रव्यमान के लिए मिलीग्राम, सेंटीग्राम, डेसीग्राम, ग्राम, डेकाग्राम, हेक्टोग्राम, किलोग्राम, मीट्रिक टन हैं। इसी प्रकार घन माप के लिए घन मिलीमीटर, घन सेंटीमीटर, घन डेसीमीटर, घन मीटर को उपयोग में लाया जाता है। चूंकि सी. जी. एस. प्रणाली, एम. के. एस. प्रणाली का एक प्रकार से छोटा रूप है अतएव एम. के. एस. प्रणाली के अनेक मात्रकों को परस्पर सी.जी.एस. प्रणाली में भी उपयोग लाया जाता है। अन्य प्रणालियों की तरह सी.जी.एस. प्रणाली में भी बल, कार्य, शक्ति, ऊर्जा, ऊष्मीय ऊर्जा, दाब इत्यादि की इकाइयों को परस्पर रूपांतरित करके निरपेक्ष अथवा गुरुत्वीय इकाइयों के रूप में प्राप्त कर लिया जाता है। C.G.S. प्रणाली में बल की इकाई डाइन तथा ग्राम-भार, कार्य की इकाई अर्ग तथा डाइन-सेमी. शक्ति की इकाई अर्ग प्रति सेकंड, ऊर्जा की इकाई अर्ग तथा दाब की इकाई ग्राम भार प्रति वर्ग सेंमी एवं डाइन प्रतिवर्ग सेमी होती है। इस प्रकार C.G.S. प्रणाली के अनेक मात्रकों का आज भी व्यापक रूप से उपयोग होता है।

मीटर-किलोग्राम-सेकंड प्रणाली :

इस प्रणाली का आविष्कार वर्ष 1901 में इटली के वैज्ञानिक जी. गोर्जी ने किया था। 1935 में ब्रूसेल्स नगर में अंतर्राष्ट्रीय वैद्युत तकनीकी आयोग ने अपनी सभा में इस प्रणाली को अपनाये जाने पर बल दिया। इस प्रणाली की भी दो उप प्रणालियां थीं : 'अपरिमेयित' तथा 'परिमेयित'। इस प्रणाली को इसके मात्रक के नाम के आधार पर M.K.S. प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली में लंबाई नापने का मात्रक "मीटर", द्रव्यमान का मात्रक "किलोग्राम" तथा समय का मात्रक "सेकंड" है। इस प्रणाली को भी अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है। यह प्रणाली फ्रांसीसी तथा ब्रिटिश प्रणाली की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक सुगम प्रतीत हुई थी, अतएव इस प्रणाली का उपयोग व्यापक रूप से होने लगा था तथा आज भी यह व्यापक रूप से उपयोग में लायी जा रही है। इसका अधिकाधिक उपयोग इंजीनियरिंग एवं औद्योगिक क्षेत्रों में होता है। इस प्रणाली के अन्य मात्रकों को भी परस्पर रूपांतरित करके प्राप्त कर लिया जाता है। इन तीनों मूल मात्रकों (मीटर-किलोग्राम-सेकंड) को समय-समय पर परिभाषित व परिष्कृत किया गया है।

मीटर-किलोग्राम-सेकंड की मानक परिभाषाएं व प्रारूप

लंबाई के मात्रक "मीटर" को "मानक मीटर" के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से समय-समय पर कई परिभाषाएं व आधार माने जाते रहे हैं। मानक मीटर के निर्धारण हेतु कभी पृथ्वी की परिधि के करोड़वें भाग को व कभी पृथ्वी के किसी ध्रुव से बिषुवत रेखा की दूरी के करोड़वें भाग को मीटर कहा गया। वर्ष 1875 में पेरिस (फ्रांस) में विश्व के अनेक देशों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें मीटर के एक मानक पर समझौता हुआ तथा एक अंतर्राष्ट्रीय माप तौल का संगठन स्थापित किया गया तथा साथ ही साथ नये मात्रकों के निर्धारण के लिए समय-समय पर मापतौल का महासम्मेलन बुलाने का निर्णय भी लिया गया। तत्पश्चात 1889 में मानक मीटर के पुनर्निर्धारण

हेतु पेरिस में पुनः सम्मेलन आयोजित। हुआ इस सम्मेलन में पेरिस के सेवेरस नामक स्थान पर माप तौल के अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय (इंटरनेशनल ब्यूरो ऑफ वेट्स एंड मेजर्स) में मानक मीटर की दूरी निश्चित कर दी गयी। इसमें प्लेटिनम-इरीडियम मिश्रधातु की एक छड़ को मानक मीटर बनाया गया। इस छड़ पर दो चिन्ह बने हुए हैं। 0^0C पर इन दो चिन्हों के बीच की दूरी को एक मीटर माना गया तथा इसे मानक मीटर कहा गया। यह आज भी वहां सुरक्षित है। इस मानक मीटर द्वारा पृथ्वी के ध्रुव से विषुवत रेखा की दूरी 1,00,00,880 मीटर आती है। मानक मीटर के इस प्रारूप को विभिन्न देश अपने नगरों/राजधानियों में प्रतीक रूप में आज भी रखे हुए हैं। वर्ष 1960 में बाट एवं माप के अंतर्राट्रीय सम्मेलन में मीटर की एक मानक परिभाषा दी गयी जिसके अनुसार "मीटर वह दूरी है जो क्रिप्टन गैस के वाष्प लैंप द्वारा उत्पन्न नारंगी रंग के प्रकाश की 16,50,7,63.73 तरंग दैर्ध्य लंबाई के बराबर होती है।" जबकि इसकी एक अन्य परिभाषा के अनुसार "कैडिमियम के स्पेक्ट्रम की लाल तरंग के 15,54,164.1 तरंग दैर्ध्य की लंबाई एक मीटर होती है।" अब मानक मीटर की नवीनतम परिभाषा प्रकाश की तरंग गति के आधार पर परिभाषित की गयी है जिसके अनुसार "मीटर पथ की वह दूरी है जो प्रकाश निर्वात में एक सेकंड के 1/299,792,458 अंश के समयांतराल में तय करता है।" इसी प्रकार मानक किलोग्राम के लिए बांट एवं माप के पेरिस स्थित सेवेरस नामक स्थान पर स्थापित अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय में रखे गये प्लेटिनम-इरीडियम की मिश्रधातु से बने बेलन के द्रव्यमान को मानक किलोग्राम माना गया है। 4^0C ताप तथा सामान्य वायुमंडलीय दाब पर एक लीटर (1000 घन सेमी.) जल का द्रव्यमान भी एक किलोग्राम होता है। इसे kg में लिखते हैं। सभी मूल मात्रकों में द्रव्यमान का मात्रक ही एक ऐसा मात्रक है जिसके नाम के पहले (पूर्वलग्न) किलो लगा हुआ है। अपने देश की राजधानी दिल्ली में स्थित राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला में भी "मानक मीटर" व द्रव्यमान के मात्रक किलोग्राम का प्रारूप "मानक किलोग्राम" को सुरक्षित रखा गया है।

आदि काल से ही समय की गणना के लिए सूर्य का सहारा लिया जाता रहा है। अतएव समय के मात्रक "सेकंड" को भी प्रारंभ में मध्यमान सौर दिन के आधार पर परिभाषित किया गया था जिसके अनुसार मध्यमान सौर दिन का 1/86400 भाग एक सेकंड कहलाता था। बाद में इसे मध्यमान सौर दिन के बजाय सायन वर्ष के आधार पर परिभाषित किया गया। एक सायन वर्ष में 365.2422 दिन होते हैं। अतएव एक सायन वर्ष में 3,15,56,926 सेकंड हुए। परंतु सभी सायन वर्ष समान न होने से 14 अक्टूबर 1960 को बाट एवं माप के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सेकंड की नयी परिभाषा के लिए वर्ष 1900 को आधार वर्ष मानकर मानक सेकंड स्वीकार किया गया जिसके अनुसार "सायन वर्ष 1900 को इस वर्ष का 1/315,56,926 भाग एक सेकंड के बराबर माना गया। तत्पश्चात वर्ष 1967 को पुनः इस बाट एवं माप के वैज्ञानिक सम्मेलन में सेकंड की नवीनतम परिभाषा दी गयी, जिसमें सीजियम परमाणु के कंपन के आवर्तकाल के आधार पर सेकंड को निश्चित किया गया, जिसके अनुसार" "परमाणु घड़ी में लगे सीजियम-133 परमाणु के 9,19,26,31,770 कंपनों का आवर्तकाल एक सेकंड होता है।" इस प्रकार एक लंबी बहस व प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात मीटर, किलोग्राम, सेकंड को परिभाषित व प्रारूपित किया गया।

मात्रकों की अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली :

1954 में माप एवं बाट का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया था जिसमें मीट्रिक प्रणाली को अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के रूप में अपनाने का निर्णय लिया गया तथा वर्ष 1960 में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसके अंतर्गत इस प्रणाली को अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली का नाम दिया गया। अंतर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए मौलिक, पूरक तथा व्युत्पन्न इकाइयों के लिए एक एकीकृत (Unified), परिमेयित (Rationalised), संसक्त (Coherent) तथा व्यापक प्रणाली अपनाने का सुझाव भी दिया गया जिससे अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली की रूपरेखा तैयार की गयी। वास्तव में यह अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली, परिमेयित M.K.S. प्रणाली

का विस्तृत एवं संशोधित रूप है। S.I. प्रणाली में 6 मौलिक या मूल इकाइयां, 2 पूरक इकाई तथा अनेकों व्युत्पन्न इकाइयां होती हैं। इसमें एक और मौलिक इकाई मोल भी सम्मिलित किया गया है जिससे अब इनकी संख्या 7 हो गयी है। इस प्रणाली को अपनाये जाने के अनेक कारण हैं जिनमें प्रमुख हैं, छोटी या बड़ी राशि को 10 की घात में अभिव्यक्त कर सकना, भिन्न-भिन्न राशियों की इकाइयों को आपस में सरलता से संबंधित व रूपांतरित किया जा सकना, निरपेक्ष प्रणाली होने के कारण इसमें गुरुत्वीय त्वरण का न होना, इंजीनियरिंग के संख्यात्मक प्रश्नों को हल करने में इस प्रणाली की सरलता, परिमेयित प्रणाली होने से M.K.S. प्रणाली के सभी लाभ प्राप्त होना, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में जूल को सभी प्रकार की ऊर्जा की इकाई मानने के कारण गणना करने में सुविधा तथा शक्ति प्रणाली की केवल एक ही इकाई वॉट होने से गणना करने में विशेष सुविधा रहती है। इसी प्रकार विद्युत की विभिन्न इकाइयों को अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में ज्यों का त्यों इकाई मान लिया गया है। दिन प्रतिदिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के परिणाम स्वरूप लंबाई, द्रव्यमान तथा समय के मात्रक को और अधिक सूक्ष्म रूप में व्यक्त करने के लिए कुछ और नये मात्रकों के स्वीकृत करने तथा इन सभी मात्रकों को वैज्ञानिक तरीकों से पारिभाषित करने की आवश्यकता महसूस हुई थी जिससे पुनः एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा जटिल एवं उच्च स्तरीय तकनीकी अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली का विकास किया गया तथा जिसे विशिष्ट वैज्ञानिक शब्दावली में परिभाषित व अभिव्यक्त किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के मौलिक या मूल मात्रकों में लंबाई (l) का मात्रक मीटर (m), द्रव्यमान (m) का मात्रक किलोग्राम (kg), तथा समय (t) का मात्रक सेकंड (s) निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त तापमान (T) ऊष्मागतिकी में ताप मापने का मात्रक ^0C (डिग्रीसेल्सियस) या केल्विन (^0K) है। इससे फॉरेन्हाइट (^0F) प्रतिस्थापित हुआ है। तथा प्रकाशमिति में प्रकाश तीव्रता (Iv) नापने का मात्रक कैंडिला (cd) तथा विद्युत धारा (I) का मात्रक एंपियर (A) निर्धारित किया गया है। इसके एक मूल मात्रक मोल (mol) को, पदार्थ की राशि या मात्रा (n) को मापने के लिए निर्धारित किया गया है। ज्ञातव्य हो कि समय के मात्रक सेकंड के साथ-साथ मिनट तथा घंटा भी सम्मिलित हैं। वास्तव में ये मूल मात्रक, अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के मूल आधार हैं। इन मूल मात्रकों में एंपियर का 1948 में (सर्वप्रथम एंपियर को M.K.S. प्रणाली में सम्मिलित किया गया था जिससे M.K.S. प्रणाली को कई लोग M.K.S.A. प्रणाली भी कहते हैं।) अंगीकार किया गया था। मीटर तथा किलोग्राम को 1960 में, केल्विन, सेंकड तथा कैंडिला 1967 में तथा सबसे अंत में मोल को 1971 में अंगीकार किया गया। संपूरक या पूरक मात्रकों की संख्या 2 है जो कोणीय मापों में प्रयुक्त होते हैं। इसमें समतलीय कोण का मात्रक रेडियन एवं घन कोण का मात्रक स्टेरेडियम है। इन दोनों मात्रकों को वर्ष 1960 में अंगीकार किया गया था । अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली का तीसरे प्रकार का मात्रक व्युत्पन्न मात्रक है। वास्तव में, व्युत्पन्न मात्रक, मूल मात्रकों के संचय से बनते हैं तथा इस प्रणाली के सभी मात्रक एक दूसरे से संबद्ध हैं तथा दूसरे मात्रकों के संदर्भ में इनकी व्याख्या की जा सकती है। व्युत्पन्न मात्रकों में आवृत्ति (f) का मात्रक हर्टज (Hz), बल (F) का मात्रक न्यूटन (N), दबाव का मात्रक पास्कल, विद्युत मात्रा का मात्रक कूलंब, विद्युत तनाव का मात्रक वोल्ट (V), विद्युत प्रतिरोध (R) का मात्रक ओम (Ω), ज्योति फ्लक्स (F) का मात्रक ल्यूमेन (L) तथा प्रदीपन का मात्रक लक्स, ऊर्जा (E) का मात्रक जूल (J) तथा शक्ति (P) का मात्रक वाट (W) निर्धारित किया गया है। मापतौल की अंतर्राष्ट्रीय समिति ने कुछ और मात्रकों के प्रयोग को मान्यता प्रदान की है जो कि व्यापक रूप से प्रचलित तो हैं किंतु यह अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के भाग नहीं हैं। इनमें लंबाई के मात्रकों में एंगस्ट्राम, चेन, इंजीनियर चेन, फैदम, फर्लांग, फुट, इंच, यार्ड, लिंक, मील, नाटिकल मील, अंतर्राष्ट्रीय नाटिकल मील तार, नाटिकल मील (इंगलैंड), नेल, पाम, इत्यादि हैं। जबकि क्षेत्रफल के मापों में एकड़, वर्ग फुट, वर्ग मील, वर्ग गज इत्यादि हैं। इसी प्रकार आयतन के मात्रकों में घन फुट, घन इंच,

तरल आऊंस, गैलन इंपीरियल, पिंट इंपीरियल हैं तथा द्रव्यमान के मात्रक के रूप में ग्रेन, हंड्रेडवेट, मन, आउंस, पौंड, क्विंटल, सेर, तोला, मीट्रिक टन, अमेरिकी टन, इंपीरियल टन इत्यादि हैं। इसी प्रकार वेग के लिए फुट प्रति मिनट, फुट प्रति सेकंड, इंच प्रति सेकंड, नाट, मील प्रति घंटा हैं जबकि ईंधन की खपत के लिए गैलन प्रति मील, अमेरिकी गैलन प्रति मील प्रमुख हैं। जबकि समय के अन्य मापन में दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष इत्यादि प्रमुख हैं। परस्पर उपयोग में लाये जाने वाले कुछ मात्रक इस प्रकार हैं। अर्ग, ओरस्टैड, अंगस्ट्राम, ओम, इलेक्ट्रॉनवोल्ट, एअर, एकड़, एंपीयर, एंपीयरआवर, एक्सकिरणमात्रक, कूलंब, क्यूरी, किलोवाट घंटा, केल्विन, कैंडिला, कैलोरी, कैरट, कैंडल पॉवर, किलोवाट, किलोग्राम, क्विंटल, ग्राम, ग्रामवेट, गैलन, गॉस, गाल, चैन, जूल, टार, टेस्ला, टन, डेसीबल, डायोप्टर, डाइन, डाल्टन, नाट, नाटिकल मील, न्यूटन, न्यूटन मीटर, प्रकाश वर्ष, पास्कल, परमाणु द्रव्यमान मात्रक (A.M.U.), पौंड, पाउंडल, फैराड, फर्मी, फुटकैंडल, फोट, फारेन्हाइट, फैदम, फर्लांग, बेवर, बेल, बार, ब्रिटिश थर्मल यूनिट, बैरल, बुशेल, बार्न, मैक्सवेल, मोल, मन, मीटर, मीट्रिकटन, यूनिट (kWH), रिम, रेडियम, लैंबर्ट, लक्स, लीटर, ल्युमन, वोल्ट, वाट, वाटआवर, सीमन, सेंटीग्रेड, सेंटीमीटर, सेकंड, स्टेरेडियन, सायन वर्ष, हेनरी, हर्टज, होज्हेड, हॉर्स पॉवर, हेक्टेअर, इत्यादि।

अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली के अंतिम अर्थात चौथे प्रकार के मात्रक में उपमात्रक आते हैं। इसके अंतर्गत विभिन्न भौतिक राशियों के छोटे एवं बड़े परिमाण की नाप के लिए बहुत से उपमात्रक स्वीकृत व निर्मित किये गये हैं। इन उपमात्रकों को ग्रीक तथा लैटिन के पूर्वलग्नों (Prefixes) को जोड़कर निर्मित किया गया है। इन्हें गुणन और भिन्न के रूप में सूचित किया जाता है। इसमें गुणन के लिए स्वीकृत पूर्व लग्नों में डेका (D)=10^1, हेक्टो (H)=10^2, किलो (k)=10^3, मिरिया (Mi)=10^4, मेगा (M)=10^6, गिगा (G)=10^9, टेरा (T)=10^{12}, पेटा (p)=10^{15}, तथा इक्टा (E)=10^{18} हैं। जबकि भिन्न के लिए स्वीकृत पूर्व लग्नों में डेसी (d)=10^{-1}, सेंटी (c)=10^{-2}, मिली (m)=10^{-3}, माइक्रो (μ)=10^{-6}, नैनो(n)=10^{-9} आंगस्ट्राम (Å)=10^{-10}, पिको (p)=10^{-12}, फेमटो (f)=10^{-15} तथा आटो (a)=10^{-18} हैं।

इसी प्रकार संकेतन नियमों की अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में से एक यह है कि तीन अंकों से अधिक संख्यात्मक मान में, अंकों को दशमलव के बाद या पूर्व तीन-तीन के वर्गों में बांटकर लिखा जाता है तथा इन्हें अलग करने के लिए तीन अंकों के बाद एक स्थान छोड़ दिया जाता है न कि अल्प विराम दिया जाता है किंतु प्राय: अवैज्ञानिक तरीके से आजकल प्राय: अल्प विराम लगा दिया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में विभिन्न प्रकार के मात्रकों सहित विभिन्न प्रकार के संकेतों, प्रयोग किये जाने वाले प्रारूपों, पूर्वलग्नों, चिन्ह आदि के बारे में विस्तृत नियम व प्रणालियां बनायी गयी हैं जिसे अपनाकर जटिलतम प्रक्रियाओं, सिद्धांतों व परिभाषाओं को आसानी से समझ कर उपयोग में लाया जा सकता है।

विमलेश चन्द्र, डब्ल्यू. टी. एम.,
माइक्रोवेव स्टेशन पालेज, पोस्ट-पालेज,
जिला-भरूच (गुजरात) 312 220

❐❐❐

निवेदन

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के व्यक्तिगत एवं संस्थागत वार्षिक सदस्यों से निवेदन है कि वे अपनी सदस्यता का नवीनीकरण यथासमय करा लें। नवीनीकरण में 3 माह से अधिक विलंब होने की दशा में उस अवधि में प्रकाशित हुए "वैज्ञानिक" के अंक प्रेषित करना संभव नहीं होगा। "वैज्ञानिक" की प्रति न मिलने पर सदस्यता क्रमांक, अंक तथा संपूर्ण पते के साथ व्यवस्थापक को निम्नलिखित पते पर लिखें।

इंद्र कुमार शर्मा,
व्यवस्थापक 'वैज्ञानिक'
पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD),
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई - 400 085.

बैटरी के संघटक एवं आकार

दो सौ वर्ष पहले आविष्कार की गयी बैटरियां आज सुवाह्य चलते-फिरते इलेक्ट्रॉनिक संयंत्रों के अभिन्न अंग हैं। सर्वप्रथम एलसंड्रो वोल्टा द्वारा आविष्कृत बैटरियों में जिंक एवं चांदी के सिक्कों को खारे पानी में डुबोकर सुखायी गयी कागज की तश्तरियों द्वारा अलग किया जाता है।

बैटरियां दो प्रकार की होती हैं। मौलिक (प्राइमरी) एवं अनुपूरक (सेकेंडरी)। मौलिक बैटरियों में ऊर्जा अनुत्क्रमणीय रासानिक क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है जबकि अनुपूरक बैटरियों में आवेशित सेलों का प्रयोग होता है। यों तो मौलिक बैटरियां काफी लोकप्रिय हैं परंतु आवेशित एवं पुनः आवेशित बैटरियों का प्रयोग भी बहुतायत से होता है।

आजकल कुछ अन्य बैटरियों का प्रयोग भी काफी हो रहा है वह हैं सौर-सेल। इसका अर्धचालकों में प्रकाश-विद्युत प्रभाव के लिए प्रयोग होता है। जब दो अलग-अलग लेप किये हुए अर्धचालकों के संयोग पर प्रकाश पड़ता है तब इलेक्ट्रॉन संतुलित अवस्था में रहते हैं जिससे थोड़ी मात्रा में वोल्टता उत्पन्न होती है। वोल्टता या प्रवाह बढ़ाने के लिए सेलों को श्रेणीबद्ध या समांतरबद्ध पद्धति से जोड़कर बैटरी बनायी जाती है। इसकी मुख्य निम्न विशेषताएं हैं :

i. एनोड तथा कैथोड विद्युतीय संपर्क बनाते हैं।

ii. इलेक्ट्रोलाइट, जो कि इलेक्ट्रॉनों की गति को कैथोड से एनोड तक संचालित करते हैं, रासायनिक क्रिया में भी सहायक होते हैं।

iii. ऊपरी ढक्कन द्वारा बैटरी को या तो बंद कर दिया जाता है, ताकि गैस न निकल सके या खोल दिया जाता है, ताकि अंदर की गैस बाहर निकल सके।

पुनः आवेशित हो सकने वाली बैटरियों में सीसा-अम्ल तथा निकल कैडिमियम बैटरियां भी प्रचलित हैं। सीसा-अम्ल बैटरियों का साधारणतया कारों में इस्तेमाल किया जाता है तथा ये काफी भारी होती हैं। निकल-कैडमियम बैटरियों को सुवाह्य इलेक्ट्रॉनिक संयंत्रों में सब मानक आकारों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इन बैटरियों को आवेशित करने के लिए सिर्फ ऊर्जा स्रोत से ही नहीं जोड़ना होता है। इसके लिए एक सतत् धारा स्रोत का प्रयोग किया जाना चाहिए जोकि उचित वोल्टता पर सेल द्वारा 45 मि.एंपियर (mA) [1 मि.एंपियर=0.001 एंपियर] ऊर्जा प्रदान कर सके। तीव्र आवेशित करने के लिए 150 मि.एंपियर धारा का प्रयोग किया जा सकता है लेकिन इससे निरावेशित होने का समय कम हो जाता है। जितना ज्यादा समय बैटरी को आवेशित करने में लगता है, उतनी ही ज्यादा बैटरी चलती है।

बैटरियों के विभिन्न प्रकार अगले पृष्ठ के चित्र में प्रदर्शित किये गये हैं।

जिंक कार्बन या लैकलांश सेल : इन सेलों का प्रयोग साधारणतया टॉर्च, ट्रांजिस्टर, रेडियो या इसी तरह के छोटे उपकरणों में किया जाता है। इन सेलों को पुनः आवेशित नहीं किया जा सकता। इसमें एक जिंक कैथोड तथा एक कार्बन एनोड एल्यूमिनियम क्लोराइड पेस्ट के इलेक्ट्रोलाइट के साथ लगे होते हैं। एनोड के आस-पास मैंगनीज ऑक्साइड का एक निध्रुवरण विभाजित होता है जोकि कार्बन पाउडर (ग्रेफाइट) के साथ मिश्रित रहता है ताकि हाइड्रोजन गैस जमा न हो सके। इस प्रकार के सेल का दूसरा नाम है शुष्क सेल। यह करीब 1.5 वोल्ट की वोल्टता प्रदान करता है।

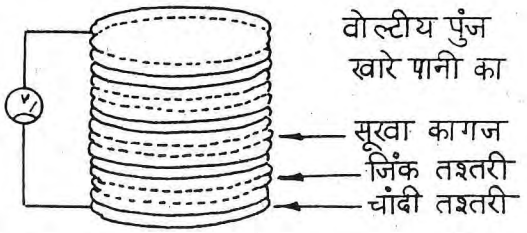

एलेसंड्रो वोल्टा द्वारा आविष्कृत प्रारंभिक बैटरी

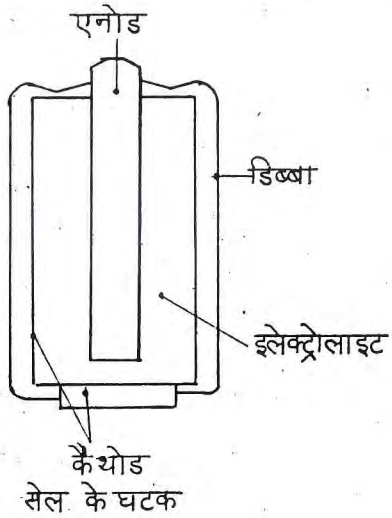

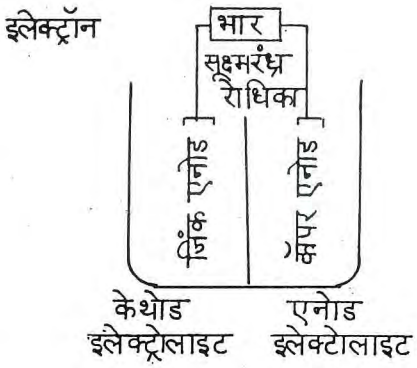

लेकलांश सेल

विभिन्न बैटरियों के आकार

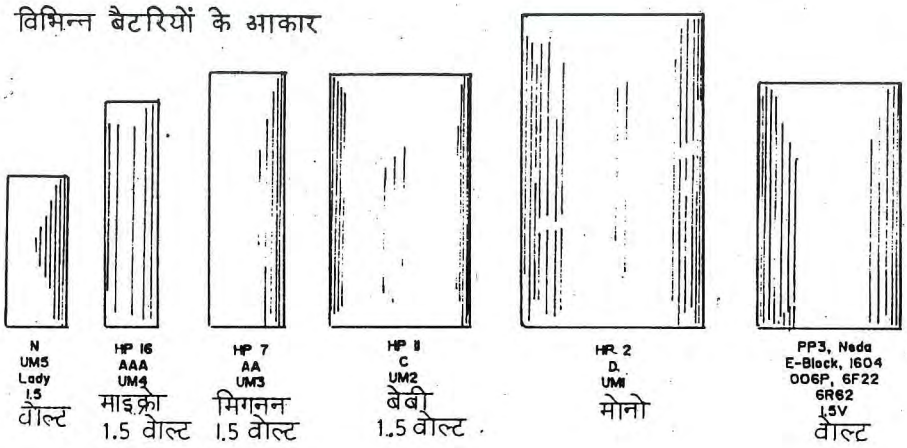

डेनियल सेल : इन सेलों में एक जिंक कैथोड तथा एक कॉपर एनोड होता है। इनको एक बर्तन में रखा जाता है, जिसके बीच में सूक्ष्म रंध्र बर्तन रोधिका होती है। कैथोड वाले हिस्से को गंधक के अम्ल द्वारा तथा एनोड़ वाले हिस्से को कॉपर सल्फेट द्वारा भरा जाता है तथा इलेक्ट्रोड को उसमें रखा जाता है।

जैसे ही कैथोड इलेक्ट्रोलाइट जिंक-आयन Zn^{++} के रूप में प्रवेश करता है, एक जिंक-परमाणु कैथोड पर दो इलेक्ट्रॉन प्रदान करता है। इस तरह कैथोड उपखंड को अतिरिक्त आवेश +2 प्राप्त होता है। इसकी पूर्ति के लिए दो हाईड्रॉक्साइड आयन्स (HO), प्रत्येक -1 आवेश के साथ, एक सूक्ष्म रंध्र रोधिका के द्वारा एनोड उपखंड में प्रवेश करते हैं। इस तरह एक कॉपर आयन एनोड से दो इलेक्ट्रॉन ग्रहण करता है जोकि कॉपर-परमाणु के रूप में एनोड पर ही जमा हो जाते हैं। बाह्य परिपथ के कारण कैथोड पर भार के कारण इलेक्ट्रॉन एनोड पर ही उपलब्ध होते हैं।

सीसा(Pb)-अम्ल बैटरी : अधिकतर कारों में इस तरह की बैटरी का प्रयोग इंजन को चलाने के पश्चात इंजन चलते रहने के लिए किया जाता है। इसको सीसे के दो इलेक्ट्रोडों द्वारा बनाया जाता है जिसमें से एक इलेक्ट्रोड पर सीसा आक्साइड का लेप किया जाता है, तथा गंधक-अम्ल के एक इलेक्ट्रोलाइट में डुबो दिया जाता है। प्रत्येक सेल की निर्गत (output) वोल्टता करीब 2 वोल्ट होती है। अत: 12 वोल्ट की कार की बैटरी तथा करीब 10 एंपियर-घंटे क्षमता के लिए छ: सेलों को श्रेणी बद्ध रूप में जोड़ दिया जाता है जोकि 10 घंटे तक एक एंपियर या एक घंटे में 10 एंपियर प्रदान करते हैं। इसी प्रकार तीन सेलों को एक साथ रखकर एक 6 वोल्ट की बैटरी मोटरसाइकिल के लिए बनायी जा सकती है।

निकल-कैडमियम सेल : आधुनिक सुवाह्य पुन: आवेशित बैटरी के उत्पादन में निकल-कैडमियम बैटरियां ही मुख्य आधार हैं। सभी लोकप्रिय आकारों में उपलब्ध, एक सैल करीब एक जिंक कार्बन सेल के बराबर (1.25 वोल्ट) वोल्टता प्रदान करता है।

क्षारीय सेल : जिंक कार्बन बैटरियों की तरह, क्षारीय सेल उच्च धारा नालिकाओं पर काफी समय तक प्रयोग किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त लाभ हैं - दीर्घ जीवन काल, निरंतर निर्गत वोल्टता तथा रिसाव के विरुद्ध बचाव।

मरक्यूरिक ऑक्साइड सेल : इन सेलों को प्राय: कैमरों तथा श्रवण-संबंधी संयंत्रों में प्रयोग किया जाता है। इन सेलों की निर्गत वोल्टता एक बहुत ही ठोस पैकेज में 1.35 वोल्ट होती है।

लिथियम सेल : इन सेलों को लिथियम मैंगनीज से बनाया जाता है तथा इनकी निर्गत वोल्टता 3 वोल्ट होती है। ये सेल कम धारा पर दीर्घ अवधि तक चलते हैं। इनका प्रयोग कम विद्युत-शक्ति पर कंप्यूटर की CMOS-RAM स्मृति बैटरी की सहायता के लिए किया जाता है।

डॉ. अरविंद कुमार गुप्ता,
उपनिदेशक (ई. ई. ए.),
8 गोखले मार्ग, कलकत्ता - 700 020

❐❐❐

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

भा. प. अ. केंद्र हमारे देश का एक अग्रणी और अनूठा शोध संस्थान है। इसका मुख्य कार्य न्यूक्लीय ऊर्जा उत्पादन क्षेत्र से संबंधित समस्याओं को हल करना व ऊर्जा उत्पादन में सहायक विधियों को विकसित करना है। यहां शोध और विकास कार्य लगातार चलता रहता है।

यह केंद्र नाभिकीय ऊर्जा शोध संयंत्रों का अभिकल्पन व निर्माण करता है। विकिरण समस्थानिकों के उत्पादन तथा विभिन्न क्षेत्रों; चिकित्सा, औद्योगिकी एवं कृषि में उनके अनुप्रयोगों को विकसित करता है। यहां शोध और विकास कार्य न केवल नाभिकीय क्षेत्र में अपितु आधुनिक विज्ञान के अन्य कई क्षेत्रों में होता है। इन सबसे प्राप्त ज्ञान व विकसित तकनीकों का उपयोग न केवल परमाणु उद्योग में वरन अन्य उद्योगों में भी लाभदायक रूप से किया जा सकता है। अपने यहां उपलब्ध विशेषज्ञता से यह केंद्र देश के निजी उद्योगों एवं अन्य सरकारी विभागों को प्रगत तकनीकी क्षेत्र में परामर्श सेवाएं देता रहा है। इस हेतु केंद्र ने कई नयी विकसित तकनीकों का समय-समय पर हस्तांतरण किया है। कुछ विकसित तकनीकों का यहां उल्लेख किया गया है :

1. प्रतिबिंब विश्लेषक (Image Analysis System) :

किसी नमूने (सैंपल) या उसके प्रतिबिंब का उचित प्रकाशीय इलेक्ट्रॉनिकी यंत्रों से निरीक्षण कर, उससे सूचना प्राप्त करने का कार्य प्रतिबिंब विश्लेषण विज्ञान के अंतर्गत आता है। इसके कई अनुप्रयोग हैं : पदार्थ विज्ञान, गुणवत्ता निर्धारण मशीनी-दृष्टि, जैव-औषध, चिकित्सा विज्ञान एवं सुरक्षा आदि। यहां विकसित यंत्र में चार मुख्य भाग हैं : (1) एक विडियो कैमरा, (2) विडियो फ्रेम पकड़ने वाला, ग्रेबर, जो प्रतिबिंब को अंकों में प्राप्त करता है, (3) एक IBM - PC - जो प्रतिबिंब-अंकों को विश्लेषित करता है, तथा (4) एक रंगीन मॉनीटर, जो प्रतिबिंब को प्रदर्शित करता है। प्रतिबिंब को अंकों में बदल कर फ्रेम ग्रेबर की स्मृति (मेमोरी) में भंडारित किया जा सकता है व सॉफ्ट-वेयर में उपलब्ध विविध प्रतिबिंब उपचारक व विश्लेषक फलनों (फन्कशंस) द्वारा तस्वीर की गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है तथा उसका विश्लेषण किया जा सकता है।

2. विडियो फ्रेम प्रोसेसर :

अपने में पूर्ण यह एक ऐसा उपकरण है जो विडियो कैमरे से प्रतिबिंब लेकर उसमें निहित सूचनाओं को अंकों में परिवर्तित, भंडारित, उपचारित व प्रदर्शित करने में सक्षम है, तथा इन सूचनाओं को वह पर्सनल कंप्यूटर को प्रेषित भी कर सकता है। विडियो सिग्नल इसमें डालकर अंकों में परिवर्तित कर संचयित किये जा सकते हैं। इसकी मेमोरी को टीवी फॉर्मेट में पढ़ा जा सकता है जिससे प्रतिबिंब स्टैंडर्ड टीवी मॉनीटर पर प्रदर्शित किया जा सकता है। अधिक विश्लेषण हेतु सूचनाओं के आवश्यकता होने पर, इस प्रणाली को मानक श्रेणी या समानांतर पोर्ट द्वारा IBM PC प्रणाली से जोड़ सकते हैं।

3. माइक्रोप्रोसेसर आधारित इलेक्ट्रोमायोग्राफ :

इलेक्ट्रोमायोग्राफी, तंत्रिका पेशीय विद्युत सिग्नलों से संबंधित है। इलेक्ट्रोमायोग्राफ (EMG) एक ऐसा उपकरण है, जो ऐसे सिग्नलों को सुग्राही इलेक्ट्रोडों द्वारा ग्रहण कर उनके पैटर्न को ऑसीलोस्कोप (Oscilloscope) जैसे पटल पर प्रदर्शित करता है। वांछित पेशी से EMG सिग्नलों को एक सूई या सतही इलेक्ट्रोडों द्वारा ग्रहण किया जाता है। पेशियों के क्रिया विभवों को आकाशीय (spatial) और कालिक समाकलित करने से जटिल EMG सिग्नल पैटर्न बनते हैं। इन्हीं को सक्रिय (live) चैनल द्वारा पटल पर प्रदर्शित किया जाता है।

'फ्रीजिंग' के दौरान EMG तरंग-रूप (वेवफॉर्म) का एक भाग अंकों में बदलकर मेमोरी में भंडारित कर लिया जाता है। यह संचयित वेवफॉर्म तब दूसरी वाहिनी पर दिखाया जाता है। वेवफॉर्म भंडारण की इस व्यवस्था के फलस्वरूप, इलेक्ट्रोडों के हटा लेने के बाद भी, उसका गहन निरीक्षण - अध्ययन किया जा सकता है। यंत्र में ही विभव द्वारा उद्दीपन (stimulation) देने की व्यवस्था है, जिससे उद्दीपन के समय तंत्रिका का अध्ययन कर सकते हैं। यंत्र के सामने पैनल पर लगे बटनों से उद्दीपन सिग्नल

की आवृति और आयाम (एंप्लीट्यूड) को चुना जा सकता है। अपक्षयिक अनुक्रिया (डिक्रीमेंटल रिसपॉंस, डी. आर.) अवस्था में अपक्षयिक अनुक्रिया का अध्ययन उत्तरोत्तर पांच उद्दीपक सिग्नल देकर किया जा सकता है । सिग्नल औसतक व्यवस्था द्वारा भंडारित सिग्नल का सिग्नल - शोर (नॉयज) अनुपात ठीक रखा गया है। ऑडियो प्रवर्धक के साथ लाउडस्पीकर लगा होने से सक्रिय EMG सिग्नल पैटर्न को सुना जा सकता है ।

4. इम्पीडेंस प्लेथीसमोग्राफ (Impedence Plethysmograph)

शरीर के किसी अंग के भीतर और उसके चारों तरफ बहने वाले रक्त बहाव की माप प्रतिबाधा (इम्पीडेस) प्लेथीसमोग्राफ द्वारा अविनाशक व अपरोक्ष रुप से की जा सकती है। चूंकि रक्त विद्युत का सुचालक है अतः शरीर के किसी भी भाग में प्रवाहित रक्त का आयतन उस अंग की विद्युत-प्रतिबाधा पर असर डालता है । इसलिए शारीरिक अंग की कुल विद्युत-प्रतिबाधा मापकर, समय के दौरान होने वाले प्रतिबाधा परिवर्तनों व उनकी दर को आंकने से अपरोक्ष रुप से, उस अंग में केंद्रीय और परिरेखीय रक्त बहाव का अंदाज लगाया जा सकता है। शरीर-अंग में बह रहे रक्त-आयतनों के बदलाव व उसके विद्युत-प्रतिबाधा परिवर्तन नीबोर (Nyboer) के समीकरण द्वारा संबंधित हैं। रक्त धमनियों में होने वाले अवरोधों के निदान में यह तरीका 96% सुग्राही (सेंसिटिव) व 98% वैशेषिक (स्पेसिफिक) तथा भीतरी शिरा में होने वाली घनास्नता (शिरा-थ्रोम्बोसिस) व हृदय के कपाटीय रोगों में 85% सुग्राही पाया गया है। परिरेखीय संवहनी रोग निदान, हृदय धमनी के रोग निदान, जन्मना हृदय-कपाटीय रोगों के निदान, शरीर के किसी भी अंग में जमा होने वाले द्रव की मात्रा का अनुमान लगाने व चिकित्सा के बाद इन सभी रोगों के मूल्यांकन में यह विधि उपयोगी है ।

स्थिर विद्युत-धारा विधि का प्रयोग कर यह उपकरण शारीरिक-अंग की विद्युत-प्रतिबाधा मापता है। शरीर के दो विपरीत छोरों के बीच दो सतही इलेक्ट्रोडों द्वारा 50kHz आवृत्ति तथा 4mA तरंग की ज्या वक्रीय विद्युत को गुजारते हैं। विद्युत धारा के पथ में किन्हीं दो बिंदुओं के मध्य विकसित विभव संकेत को ग्रहण करने के लिए दो अन्य इलेक्ट्रोडों का उपयोग करते हैं। इस तरह प्राप्त संकेतों का विश्लेषण कर उस अंग की सकल (ग्रौस) विद्युत प्रतिबाधा का माप तथा समयानुसार उसमें आने वाले परिवर्तनों को मापा जा सकता हैं ।

इन विधियों / उपकरणों के बारे में अधिक जानकारी हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रभागाध्यक्ष,
तकनीकी हस्तांतरण व सहयोग प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085
टेलिफोन - (022) 556 9859

प्रस्तुति : डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला,
संपादक "वैज्ञानिक",
रसायनिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र,
मुंबई - 400 085

अन्य समाचार

अब टमाटर और बैंगन एक ही पौधे पर लगेंगे :

आप सभी लोगों ने पोमेटा का नाम तो सुना ही होगा जिसमें टमाटर और आलू एक ही पौधे में लगने की बात कही गयी थी लेकिन इन पौधों को व्यवसायिक स्तर पर नहीं उगाया जा सका। लेकिन अभी हाल ही में कर्नाटक के एक कृषि अधिकारी ने छोटे से स्थान पर रहते हुए ग्राफ्टिंग (कलम या रोपण) के जरिये दो पौधों को इस तरह जोड़ा कि अब एक ही पौधे पर बैंगन और टमाटर लग रहे हैं ।

बड़ी-बड़ी चकाचौंध प्रयोगशालाओं से दूर रहते हुए मैसूर के पास एक गांव हुनसूर में काम करते हुए एक अज्ञात कनिष्ठ अधिकारी अब्दुल मस्फूर ने रोपण क्रिया का प्रयोग करते हुए एक ऐसा पौधा विकसित करने में सफलता पायी जिसके एक ही तने से दो प्रकार के बैंगन और टमाटर मिलते

हैं। इस आश्चर्यजनक पौधे को विकसित करने वाले मस्फूर 30 से भी अधिक वर्षों से कर्नाटक कृषि सेवा में कनिष्ठ अधिकारी हैं तथा कृषि सेवा के बागवानी विभाग में हैं। दशकों से वे पौधा ग्राफ्टिंग तकनीकों में नये-नये सुधार करते रहे लेकिन मस्फूर को कभी भी समुचित सम्मान व महत्व नहीं मिला। अपने नये प्रयोग के अंतर्गत श्री मस्फूर ने स्थानीय भाषा में "बटेटे सुंदे" कहे जाने वाले जाली पौधे के तने का आधार लिया और बाद में इस पर टमाटरों तथा बैंगनों के दो किस्मों के पौधों के तनों को रोपित किया।

टमाटर और बैंगन एक ही पौधे पर विकसित करने के लिए मस्फूर ने वर्षों तक कठिन मेहनत की है। इसके कारण जंगली पौधे के तने पर बैंगन और टमाटर साथ-साथ लगने लगे हैं। कृषि वैज्ञानिकों ने इस पौधे पर प्रक्रिया को एक दुर्लभ घटना बताया और कहा कि यद्यपि पिछले कई वर्षों से रोपण तकनीकें बहुत विकसित हो गयी हैं लेकिन एक किसान द्वारा जो कुछ किया गया है वह वास्तव में दुर्लभ और अनूठी बात है। मस्फूर अभी अपने प्रयोग पर काम कर रहे हैं। वह अपने खेतों पर काफी समय देते हैं। जिसके तहत वे टमाटर और बैंगन के साथ-साथ उसी पौधे पर मिर्च भी उगाना चाहते हैं। यदि व्यावसायिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो इस रोपण की तकनीक का बेहतर इस्तेमाल हो सकता है। जिन बगीचों में स्थान की कमी है उसमें इस नयी तकनीक से फसलें उगायी जा सकती हैं। अतः अब चार सब्जियों को एक ही पौधे से प्राप्त किया जा सकेगा। साथ ही चूंकि समूचा पौधा एक ही जंगली तने पर आधारित रहता है इसलिए परंपरागत बीमारियों को रोका जा सकेगा तथा पौधों के मुड़ने से बचा सकेगा। इस पौधे का एक राज और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि सब्जियां समूचे वर्ष भर उपलब्ध रहेंगी जबकि यही सब्जियां परंपरागत तरीके से उगायी जाती रहेंगी तो वे मौसमी ही रहती हैं और इनकी अवधि भी बहुत कम होती है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि मस्फूर द्वारा विकसित सब्जियों के पौधे की आयु भी लगभग तीन वर्ष होगी जबकि परंपरागत पौधे छह माह तक ही जीवित रहते हैं और फल दे पाते हैं। इस पौधे की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन पर कीटनाशक, कृमिनाशक तथा उर्वरकों की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए अब हम बैंगन तथा टमाटर को कम लागत में अच्छा प्राप्त कर सकते हैं।

डॉ. राकेश सेंगर,
1752/10, टीचर्स होम,
गो. ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
पंतनगर - 263 145

संगोष्ठी समाचार

'आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान'

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद भा. प. अ. केंद्र, मुंबई ने हर वर्ष मुंबई से बाहर आयोजित की जाने वाली विज्ञान संगोष्ठियों की परंपरा को बनाये रखते हुए गोवा विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा, के साथ मिलकर 'आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान' शीर्षक विषय पर 3-4, सितंबर 1997 को एक द्वि दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया। यह संगोष्ठी राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा के प्रांगण में संपन्न हुई। जब राष्ट्र स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ मना रहा हो, उस समय राष्ट्र के आर्थिक विकास में भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी कार्यक्रम के योगदान की समीक्षा करना निसंदेह सार्थक है। आज ऊर्जा, पेयजल, पर्यावरण संरक्षण, प्रगत तकनीकी, बायो-तकनीकी, पदार्थ तकनीकी, सुपर कंप्यूटर, अंतरिक्ष विज्ञान जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन पर इक्कीसवीं सदी के आगमन की तैयारी में विचार करना सामयिक एवं आवश्यक है।

इस संगोष्ठी का उदघाटन 3 सितंबर 1997 को गोवा सरकार में मुख्यसचिव डॉ. जी. सी. श्रीवास्तव के कर कमलों द्वारा दीप प्रज्वलन के साथ परंपरागत ढंग से संपन्न हुआ। उन्होंने अपने वक्तव्य में संगोष्ठी के विषय की महत्ता पर जोर देते हुए कहा कि देश में आयी 'हरित क्रांति' विज्ञान की ही देन है। हालांकि, भारत में विज्ञान

एवं तकनीकी मानवशक्ति की कमी नहीं है (संसार में द्वितीय स्थान पर) तथापि हम कुछ सरकारी कार्य पद्धतियों की क्लिष्टता के कारण समाज में बहुत अधिक छाप नहीं बना पा रहे है। विज्ञान एवं तकनीकी कार्यों के लिए दिया गया बजट, समग्र राष्ट्रीय उत्पाद (जीडीपी) का काफी कम होने के बाबजूद भी उसको पूरा उपयोग में लाना संभव नहीं हो पा रहा हैं। अतः आवश्यक है कि क्लिष्ट सरकारी पाबंदियों से अलग एक उपयुक्त वातावरण तैयार किया जाय। उन्होंने बताया कि हिं. वि. सा. प. ने अहिंदी क्षेत्रों में जाकर हर वर्ष जो संगोष्ठी आयोजित करने की योजना बनायी है वह निसंदेह प्रसंशनीय है। एक अहम् बात जो उन्होंने कही वह थी कि भारत जैसे देश में न केवल हिंदी बल्कि अन्य क्षेत्रीय। प्रादेशिक भाषाओं में इस प्रकार की संगोष्ठियों का आयोजन जनमानस को विज्ञान एवं तकनीकी की जानकारी देने में सहायक होगा।

इससे पूर्व मंचासीन अतिथियों का पुष्पगुच्छों से स्वागत किया गया। तदुपरांत गोवा विश्वविद्यालय की छात्राओं द्वारा सरस्वती वंदना एवं स्वागत गीत प्रस्तुत किये गये। राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के निदेशक डॉ. ई. डीसा ने अपने स्वागत भाषण में बताया कि यहां गोवा में भी हिंदी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पिछले चार वर्षों में यह तीसरी संगोष्ठी है तथा हमारे संस्थान ने 'समुद्र मंथन' नामक एक पुस्तक का हिंदी में प्रकाशन किया है। परिषद सचिव डॉ. अशोक कुमार सूरी ने परिषद की चर्चा करते हुए इसके विभिन्न कार्यक्रमों की जानकारी दी तथा यह बताया कि यह पहला अवसर है जब हमने शोध पत्रों को पोस्टर सत्र के माध्यम से अपनी विज्ञान संगोष्ठियों में सम्मिलित करने की शुरुआत की। इस संगोष्ठी के संयोजक डॉ. संजीव धाड़वाडकर ने गोवा निवासी होने के कारण, संगोष्ठी परिचय के साथ-साथ बाहर से आये प्रतिभागियों का स्वागत भी किया। परिषद अध्यक्ष, डॉ. सी. के. गुप्ता (निदेशक, पदार्थ वर्ग, भा. प. अ. केंद्र) ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में परमाणु ऊर्जा विभाग की कुछ उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर बल दिया कि स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के सुअवसर पर हमें विभिन्न वैज्ञानिक संगोष्ठियों में कम से कम एक वार्ता राजभाषा हिंदी में रखने का प्रावधान बनाने का निर्णय लेना चाहिए ताकि इसका महत्त्व बना रहे। अन्य प्रादेशिक भाषाएं भी विज्ञान को जन सामान्य तक पहुंचाने में भी उतनी सक्षम हैं जितनी कि हिंदी, और इस दृष्टि से वे सभी हिंदी की पूरक हैं न कि प्रतिस्पर्धी।

इस अवसर पर पधारे विशेष अतिथि, गोवा विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. बी. एस. सोंडे ने आर्थिक विकास में विज्ञान एवं तकनीकी की महत्ता को स्पष्ट करते हुए विज्ञान एवं तकनीकी दृष्टि से विकसित संसार के तीन प्रमुख राष्ट्र सयुंक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा कोरिया के सापेक्ष भारत के विज्ञान एवं तकनीकी से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे मानव संसाधन, समग्र राष्ट्रीय उत्पाद का प्रतिजन निवेश, संचार एवं जानकारी जागरु कता तथा व्यापक (overall) आर्थिक स्थान इत्यादि का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया तथा भारत की शोचनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए वैज्ञानिकों से विशेष अनुरोध किया। स्थानीय आयोजन समिति के अध्यक्ष डॉ. अरविंद जी. ऊंटवाले, ने मंचासीन अतिथियों, प्रतिभागियों तथा आयोजन समिति के सभी संबंधित सदस्यों के प्रति विशेष आभार प्रकट किया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि शीघ्र ही कोकणी भाषा में भी संगोष्ठी आयोजित की जायेगी। मंच संचालन का कार्य डॉ. उमेश कुमार सिंह ने किया।

संगोष्ठी में कुल 150 प्रतिभागियों ने भाग लिया। यहां प्रस्तुत आमंत्रित वार्ताओं एवं वार्ताकारों की सूची अगले पृष्ठ की तालिका में दी गयी है। कुल मिलाकर 17 आमंत्रित वार्ताएं तथा लगभग 25 से 30 शोध पत्र पोस्टर सत्र में प्रस्तुत किये गये। 'गोमांतक', पुढ़ारी गोवा, नव हिंद टाइम्स के अलावा अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस संगोष्ठी की जानकारी जन सामान्य तक पहुंचाने में समुचित भूमिका अदा की।

प्रस्तुति : **डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल,**
प्रमुख-संपादक "वैज्ञानिक"

तालिका : आमंत्रित वार्ताओं एवं वार्ताकारों का विवरण

क्र. सं.	वार्ता का शीर्षक	वार्ताकार एवं उनका पता
1.	सुपर कंप्यूटिंग की वर्तमान स्थिति	श्री हरीश कुमार कौरा, अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र, मुंबई - 400 085
2.	नाभिकीय तकनीकें एवं पर्यावरण विज्ञान	डॉ. एस. बी. मनोहर, अध्यक्ष, रेडियो रसायनिकी प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
3.	अंतरिक्ष तकनीकी	डॉ. एस. एम. श्रीवास्तव, प्रधान, फ्रिक्वेंसी कनवर्टर प्रभाग, अंतरिक्ष उपयोग केंद्र, अहमदाबाद - 380 053
4.	भविष्य में जल की बढ़ती मांग के संदर्भ में जल स्रोतों का संरक्षण और प्रबंधन	डॉ. राम गोपाल, निदेशक, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर 342 011
5.	पानी की कमी वाले क्षेत्र में निर्लवणीकरण तकनीक की महत्व	श्री बृज मोहन मिश्रा एवं श्री विनय कुमार श्रीवास्तव निर्लवणीकरण प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
6.	मूत्र पथरी और उसका नियंत्रण	डॉ. बी. जे. शंकर, अध्यक्ष, आयुर्विज्ञान प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
7.	औषधीय पादप एवं उनका आर्थिक महत्व	डॉ. अशोक बनर्जी, अध्यक्ष, जैव कार्बनिक प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
8.	जीन क्लोनिंग-सामाजिक एवं प्रौद्योगिक उलझनें	डॉ. यू. एम. एक्स. सांगोडकर एवं श्री मनीष भारद्वाज, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा - 403 205
9.	औषधियों की संरचना में संगणकों का योगदान	श्री रवि डी. माकडे एवं डॉ. विनय कुमार, ठोस अवस्था भौतिकी प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
10.	कृषि अनुसंधान में उपयोग हेतु नाइट्रोजन-15 का समृद्धिकरण	डॉ. मुकुंद बाजपेयी, अध्यक्ष, रासायनिकी इंजिनियरी प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
11.	नाभिकीय विकिरणों के औद्योगिक उपयोग	डॉ. एस. गंगाधरण, मुख्य कार्यकारी, विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड, मुंबई - 400 094
12.	सिंधु सभ्यता के उद्भव एवं विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान	श्री ए. एस. गौड़ एवं सुंदरेशन, सुमुद्री पुरातत्त्व केंद्र, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, डोना पावला, गोवा - 403 004
13.	आधुनिक जीवन में बहुलकों का उपयोग	डॉ. मधुकर सराफ एवं पूनम अवस्थी, रक्षा पदार्थ एवं सामग्री अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला, कानपुर
14.	उच्च तापीय ईंधन सेल : महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत	डॉ. एस. एस. सिंह, वैज्ञानिक, रक्षा विज्ञान केंद्र, मेटकॉफ भवन, नयी दिल्ली - 110 054
15.	सौर-तापीय विद्युत ऊर्जा संयंत्र	श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव, परियोजना प्रबंधक (आई. पी. आइ. जी.) एवं अध्यक्ष नियंत्रण प्रणाली प्रभाग, भा.प.अ. केंद्र
16.	21वीं शताब्दी के ऊर्जा के विकल्प	श्री रवींद्र मागो, न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन, मुंबई
17.	औद्योगिक संयंत्रों में सुरक्षा	श्री वी. के. महेंद्रू फैक्टरी महाप्रबंधक, हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड 165/266 बैकवे रिक्लेमेशन, मुंबई 400 020

कुछ फूल : कुछ कांटे

'वैज्ञानिक' पत्रिका की प्रति समय पर प्राप्त हो रही है। इसमें छपे लेख एवं रोचक जानकारियों को पढ़ कर मुझे ऐसा लगता है कि अभी भी सीखने को ढ़ेर सारा है। सचमुच 'वैज्ञानिक' जैसी हिंदी पत्रिका निकालकर आपने आम नागरिकों तक वैज्ञानिक तथ्यों को पहुंचाने का अदम्य साहस किया है। इसके लिए 'वैज्ञानिक' परिवार बधाई का पात्र है।

23-5-97

सुनील कुमार सिंह
125 गंगा नगर,
ऋषिकेश (उ. प्र)

मेरी जानकारी में आज हिंदी में 'विज्ञान', 'वैज्ञानिक', 'आविष्कार', 'विज्ञान प्रगति' इत्यादि विज्ञान पर आधारित पत्रिकाएं निकल रही हैं। नाम के अनुरूप पाठ्यसामग्री में अंतर होना ही चाहिए।

मैं 'जस नाम तस गुण' के अनुरूप 'वैज्ञानिक' को वैज्ञानिकों पर आधारित बनाना चाहता हूं। इसमें वैज्ञानिकों की समस्या-समाधान, पारिवारिक, मानसिक, आर्थिक राजनीतिक, शारीरिक, रचनात्मक आदि की भी चर्चा करें। वैज्ञानिकों को अपने मन में उस गुत्थी को सुलझाने में कितना आनंद व परेशानी होती है संबंधी लेख कहानी दें तो अच्छा रहेगा। आज अनेकानेक विभागों व विषयों के वैज्ञानिक हैं। हमारे वैज्ञानिकों का विश्व में स्थान, प्राचीन काल के वैज्ञानिक - उनकी कार्य अभिव्यक्ति, भाव, विचार, ध्येय आदि की जानकारी, भी दें। एक प्राचीन व नये वैज्ञानिक की जीवनी दें। साथ में इन्होंने किस आविष्कार को जन्म दिया उसकी जानकारी दें।

मेरे विचार से जब एक साधारण व्यक्ति भी इस पत्रिका का नियमित अध्ययन राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से करके वैज्ञानिक बनने की प्रेरणा ले कर उस दिशा में अग्रसर हो सके तभी मैं पत्रिका को सफल, सक्षम व पूर्ण नाम अनुरूप पत्रिका समझने लगूँगा।

21-9-97

राजेन्द्र प्रसाद 'मधुबनी',
व्याख्याता मनोविज्ञान,
फ्रेण्डस कॉलोनी, मधुबनी, बिहार 847 211

[आपके सुझावों एवं अपेक्षाओं के लिए धन्यवाद। 'वैज्ञानिक' पत्रिका में विभिन्न स्तर की जानकारी दी जाती है। समय-समय पर विज्ञान नाटक, कविताएं, कहानियों पहेलियों, के माध्यम से विज्ञान को जन सामान्य तक पहुंचाने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान में सर्वोच्य पुरस्कार 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त करने वाले वैज्ञानिकों के कार्य तथा उनके जीवन पर लेख दिये जाते हैं। 'मानव स्वास्थ्य' तथा 'बाल विज्ञान' पत्रिका के विशेष स्तंभ रहते हैं। 'वैज्ञानिकों' तथा विज्ञान प्रसार की समस्याओं से संबंधित पहलुओं को 'संपादकीय' के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। -सं.]

'वैज्ञानिक' के जन.-मार्च '97 अंक में संपादकीय में 'गोपनीय आंकड़ों एवं जानकारियों की सुरक्षा समस्या' पर डाला गया प्रकाश बेहद महत्वपूर्ण है। 'नोबेल पुरस्कार किसे और क्यों ?' शीर्षक द्वारा उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायी गयी है।

5-9-97

राम गोपाल परिहार
हिंदी विभागाध्यक्ष,
जवाहर नवोदय विद्यालय, बिरखड़ी (रौंन),
जिला - भिंड (म. प्र.) - 477 335

❐❐❐

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियो आइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रुप से विकास किया है एवं देश - विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं सेवाएं इस प्रकार हैं :

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, स्र्ह, शल्य ब्लेड, दस्तानें, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.

टेलीफोन : 555 1676/555 3145

तार : ब्रिट एटम, बम्बई - 94, टेलेक्स : 011 72212 ब्रिट इन

With Best Compliments from

INDIAN RARE EARTHS LTD.

Offers the following products :

Beach Sand Minerals

Ilmenite (TiO_2 : 60%, 55% & 50%)
Natural Rutile
Zircon/Zircon Flour
Granular Silimanite (-65 +100 Mesh)
Garnet
Leucoxene and Synthetic Rutile

Rare Earths

Rare Earths Chloride
(original and heavies-lean)
Rare Earths Fluoride
Rare Earths Oxide
Cerium Oxide/Cerium Hydrate
Didymlum Carbonate
Samarium/Yttrium/Gadolinium/Europium
Concentrates (Individual and Mixed)

Particular attention of Interested buyers/users is drawn to the following products available at very attractive prices :

Synthetic Rutile (93% TiO_2)
Ilmenite : MK Grade (55% TiO_2 Min.)
Zircon (65% ZrO_2 with max. 0.2% TiO_2 and 0.1% Fe_2O_3)
Granular Silimanite (Min. 59% Al_2O_3)
Samarium Oxide (96%)

For further details, please contact :

The Chief General Manager (Mktg.)
Indian Rare Earths Ltd.
Sherbanoo, 6th Floor, 111, Maharshi Karve Road,
Churchgate, Mumbai - 400 020. INDIA
Tel. : (022) 209 6800, 203 0915 # Fax : (022) 200 4430
Tlx. : (11) 83122, 83254 # Cable : RAREARTH, BOMBAY, INDIA

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा
श्री इंद्र कुमार शर्मा द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348) में मुद्रित व प्रकाशित ।

भारत सरकार
परमाणु ऊर्जा विभाग

नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र
हैदराबाद - 500 062

निम्नलिखित पदार्थों का वाणिज्यिक स्तर पर निर्माण एवं उनकी आपूर्ति की जाती है :-

संधिरहित जंगरोधी इस्पात नलिकाएं / पाइप

रसायन, उर्वरक, धातुकीय, पेट्रोरसायन, तेलशोधक, नाभिकीय तथा विद्युत उत्पादन के उद्योगों के लिए एएसटीएम ए 312/213/269 के अनुसार ऑस्टेनिटिक स्तर की नालिका/पाइप का तीसरे पक्ष/ एन. एफ. सी. द्वारा निरीक्षण ।

ठेके का कार्य

ग्राहकों द्वारा कच्चे माल दिये जाने पर कुप्रोनिकल, टाइटेनियम और अन्य फेरस व अ-फेरस श्रेणियों को बहिर्वेधन/शीत बेल्लन की बेयरिंग इस्पात नलिकाओं में बदलने के लिए काम स्वीकारे जाते हैं ।

अतिउच्च शुद्धता के विशेष पदार्थ

इलेक्ट्रॉनिक उद्योग के लिए 99.999% शुद्धता के एंटीमनी, बिस्मथ, इंडियम, कैडमियम, जिंक, स्वर्ण, स्वर्ण पोटैशियम साइनाइड आदि की आपूर्ति ।

फोटोकॉपी के लिए अति उच्च शुद्धता के सेलेनियम व टेल्युरियम, इलेक्ट्रॉनिक वल्ब के निर्माण के लिए जर्कोनियम चूर्ण, रसायन और उर्वरक उद्योगों के लिए टेंटालम चादरों तथा छड़ों और संविरचित पदार्थों की आपूर्ति ।

अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए लिखें :

विपणन प्रबंधक,
नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र
पोस्ट : इ. सी. आई. एल., हैदराबाद 500 062.
● दूरभाष : 7120151 विस्तार (4224) ● (सीधे) 7121239
● टेलेक्स : 0425-7004 ● ग्राम : "एनयूसीएफयूइएल"
● फैक्स : 040-7121209, 7121305

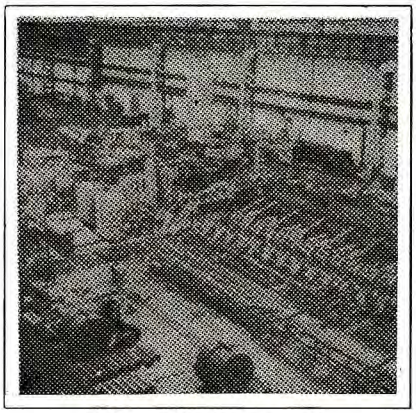
क्षैतिज बहिर्वेधन दाब से

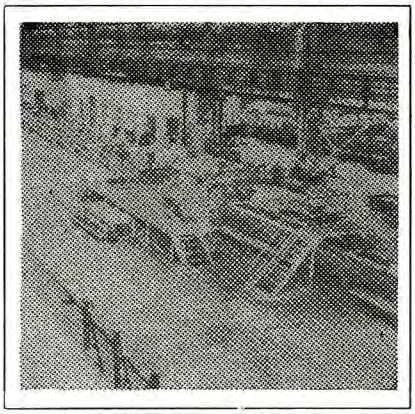
शीत पिल्गरन मिल

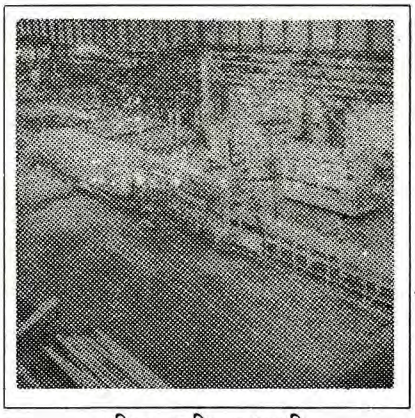
दीप्त अनीलन भट्टी

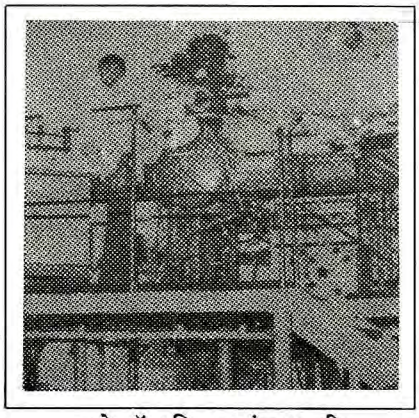
इलेक्ट्रॉन किरण पुंज भट्टी